खण्ड 3
धार्मिक आंदोलन

ignou
THE PEOPLE'S
UNIVERSITY

इकाई 10 धर्म और एकांत : भक्ति एवं सूफीवाद*

इकाई की रूपरेखा

10.0 उद्देश्य

10.1 प्रस्तावना

10.2 भक्ति परंपरा

10.2.1 भक्ति के मार्ग एवं स्तंभ

10.2.2 भक्ति परंपरा : दक्षिण

10.2.3 भक्ति परंपरा : उत्तर

10.3 सूफीवाद

10.3.1 सूफीवाद क्या है?

10.3.2 भारत में सूफीवाद का प्रसार

10.4 सूफीवाद एवं भक्ति : तुलना

10.4.1 मध्यकालीन रहस्यवाद का विकास

10.4.2 सूफी-भक्ति अन्योन्यक्रिया

10.4.3 भक्ति-सूफी शिक्षाएँ

10.5 सारांश

10.6 संदर्भ

10.7 बोध प्रश्नों के उत्तर

10.0 उद्देश्य

इस इकाई का अध्ययन करने के बाद, आपः

- दो धार्मिक आन्दोलनों को समझ सकेंगे जो कि मध्यकाल के दौरान भारत में प्रचलित थे;
- भक्ति तथा सूफी परंपराएँ तथा उन्होंने क्या आह्वान किया, इसकी जानकारी प्राप्त कर सकेंगे; और
- सूफीवाद तथा भक्ति परंपरा के बीच की अंतःक्रिया एवं अंतःपरिवर्तन के बारे में जान सकेंगे।

10.1 प्रस्तावना

हम इकाई की रूपरेखा को प्रस्तुत करते हुए तथा भक्ति व सूफीवाद के विकास की पृष्ठभूमियों की व्याख्या करते हुए हम शुरुआत करते हैं। इसके बाद हम भक्ति परंपरा की जाँच करेंगे जिसमें भक्ति के तीन मार्ग तथा भक्ति के दो स्तंभ शामिल हैं। उसके बाद हम दक्षिण में भक्ति परंपरा पर विचार करेंगे, साथ ही उत्तर में भक्ति परंपरा की जाँच करेंगे। अनुभाग 10.4 में सूफीवाद तथा भक्ति के बीच तुलना की गई है।

*इग्नू पाठ्यसामग्री से अंगीकृत : *समाज और धर्म* (ESO15) की वंदना सिन्हा द्वारा रचित इकाई 24 का नीता माथुर द्वारा संशोधन।

आइये, अब हम इन मध्यकालीन धार्मिक आन्दोलनों की आवश्यक पृष्ठभूमि को भी प्रस्तुत करें। इस तरह भक्ति एक ही ईश्वर के प्रति व्यक्तिगत समर्पण भाव पर बल देती है। यह इंगित किया जा सकता है कि दक्षिण भारत के अलवर भक्ति संतों ने 5वीं तथा 9वीं शताब्दी के बीच अपनी भक्ति कविताओं की रचना की थी। वे कृष्ण के भक्त थे। उन्होंने कृष्ण की आराधना; माता-पिता, प्रेमी, मित्र तथा भक्ति रूखों पर आधारित प्रेम के साथ की। आचार्यों ने, जिन्होंने अलवरों का अनुसरण किया, उनमें एक बौद्धिक दृष्टिकोण मौजूद था, उन्होंने ईश्वर पर निर्भरता को भावनात्मक की बजाय तार्किक तौर पर लिया।

16वीं शताब्दी में वल्लभ ने श्री कृष्ण-राधा पर आधारित एक पंथ की स्थापना की। कृष्ण की भक्ति पर श्री चैतन्य महाप्रभु (1485-1533 ई.) ने भी काफी ध्यान दिया, जो कि वल्लभ के समकालीन थे। किन्तु श्री चैतन्य महाप्रभु की आराधना परमानन्ददायक किस्म की तथा आध्यात्मिक मुक्ति के मार्ग के रूप में हरिनाम (श्री कृष्ण) का जाप किये जाने को लोकप्रिय बनाने की थी। नामदेव (14वीं शताब्दी के अंत में) तथा रामानंद भी महत्वपूर्ण भक्ति संत थे। रामानन्द के शिष्यों ने उत्तर भारत में भक्ति धारा को लोकप्रिय बनाया, जिन्होंने अपने संदेशों के लिये स्थानीय भाषा का इस्तेमाल किया । मीराबाई को भी रामानन्द के एक शिष्य रविदास ने दीक्षा दी थी।

आइये, अब हम सूफीवाद पर विचार करें जो कि एक ऐसा शास्त्र है, जो ईश्वर के साथ एकता के व्यक्तिगत अनुभव का उद्देश्य लेकर चलता है। सूफीवाद की शुरूआत 8वीं शताब्दी के आसपास हजरत हबीब, आजमी (738 ई.) जैसे संतों की प्रेरणा से हुई। कुछ विद्वानों का यह मानना है कि सूफीवाद इस्लामी नियमों के विरुद्ध नहीं है दरअसल सूफीवाद की प्रक्रिया इस्लामी नियमों के साथ घनिष्ठ रूप से जुड़ी हुई है। सूफी की व्याख्या कुरान में पाये जाने वाले तीन बुनियादी धार्मिक नजरियों से की जा सकती है। ये हैं इस्लाम, ईमान तथा अहसान के रुख।

इस्लाम का रुख यह है कि अल्लाह तथा कुरान की शिक्षाओं को अंगीकार किया जाये। ईमान धर्म में पुनः डूब जाने तथा इसकी शिक्षाओं में गहरी आस्था की माँग करता है। अहसान आध्यात्मिक परमानन्द की सर्वोच्च अवस्था है। ये इस्लाम में धार्मिकता की तीन अवस्थाएँ हैं।

हम अपनी प्रस्तावना में यह इंगित करना चाहते हैं कि सूफी तथा भक्ति आन्दोलनों ने अनेक क्षेत्रों में परस्पर समन्वय किया था। आइये पहले हम भक्ति परंपरा पर विचार कर लें।

10.2 भक्ति परंपरा (The Bhakti Tradition)

मध्यकालीन भारत में जातिगत सरंचना ही थी, जिसने मानव के जीवन तथा संबंधों के उस तानेबाने को नियंत्रित किया जिनमें कि वे प्रवेश कर सकते थे। इस तरह से उभरे सामाजिक विभाजन, जैसा कि उल्लेख किया गया, कठोर, गैर-लचीले तथा असमानता पूर्ण थे और उन्होंने भयानक असमानताओं को जन्म दिया। मनुष्यों तथा सामाजिक समूहों के बीच सुविधा-प्राप्ति, सुविधाहीनता और असमानताएं पैदा कीं। यद्यपि यह अत्यधिक पक्षपातपूर्ण व्यवस्था थी, फिर भी इसके खिलाफ जो कुछ किया अथवा कहा जा सका, वह बहुत थोड़ा ही था, क्योंकि इसे हिन्दू विचारधारा का समर्थन हासिल था, खासतौर से निम्न जाति और अशुद्ध जन्म तथा व्यवसाय के खिलाफ उच्च एवं शुद्ध जन्म तथा व्यवसाय की धारणा का दूसरे शब्दों में हिन्दू उतना ही अधिक एक सामाजिक व्यवस्था थी, जितनी कि वह एक धर्म था तथा इसने एक ऐसा विचारधारात्मक ढाँचा उपलब्ध कराया, जिसके आधार पर हिन्दू समाज का उदय हुआ।

दूसरे शब्दों में, हिन्दू धर्म, एक धर्म तथा सामाजिक तानाबाना, दोनों ही था, जिसने कि हिन्दुओं के जीवन, वह किस जाति में पैदा हुआ, जोकि उसके कार्यों अथवा कर्म को निर्धारित करता था, ब्राह्मण का एक अंश होना, तथा मोक्ष अथवा अपनी आत्मा की स्वाधीनता अथवा अतरत्व प्राप्त करने का लक्ष्य रखना, आदि जैसे कारकों से ही नियंत्रित रहता था। इसके अलावा यह याद रखना चाहिये कि हिन्दू धर्म कोई ऐसा उद्घाटित धर्म नहीं था, जिसका कि कोई एकमात्र मूलपाठ हो। हिन्दू धर्म के विकास के प्रत्येक चरण के साथ नये धर्मग्रंथ तथा मूलपाठ सम्मिलित होते गये। इस तरह हमें वेद, उपनिषद पुराण तथा भागवत् गीता भी उपलब्ध हो सकी। यद्यपि हमने इस बात पर बल दिया है कि जाति प्रथा एक ऐसी व्यवस्था थी जिसने हिन्दू भारत के जीवन के आधार की रचना की और वह कठोर तथा अपरिवर्तनीय थी, फिर भी धर्म के विकास की अवस्थाओं के दौरान अनेक जाति प्रथा-विरोधी आन्दोलन उभर कर सामने नहीं आये । ई. पू. में बौद्ध एवं जैन धर्म ने जातिगत विभाजनों तथा सामाजिक असमानता के विरुद्ध आवाज उठाई थी। यह संघर्ष आगे बढ़ता गया और मध्यकालीन भक्ति आन्दोलन अथवा एक ही ईश्वर के प्रति पूरे तौर पर समर्पित हो जाने की भावना के उदय के साथ अपने चरमोत्कर्श पर पहुँचा जिसके मद्देजर इस इकाई का विशेष रूप से महत्व है।

इसमें भी भक्ति आन्दोलन का काफी महत्व है। इसकी वजह यह है कि हालांकि भक्ति आन्दोलन हिन्दू धर्म की कुछ मान्यताओं के विरोध में था, फिर भी भावी युगों में हिन्दू धर्म के विकास के दौरान काफी कुछ, जो कि हिन्दू धर्म का हिस्सा बना, भक्ति परंपरा का ही परिणाम था। इस परंपरा का दरअसल उत्तर से दक्षिण भारत तक व्यापक प्रसार था । हम उत्तर व दक्षिण में इसके विकास की रूपरेखा अलग-अलग प्रस्तुत करेंगे।

10.2.1 भक्ति के मार्ग एवं स्तंभ (Paths and Pillars of Bhakti)

आधुनिक ऐतिहासिक नजरिये से भक्ति का विकास प्राचीन भारत के तीन प्रमुख धार्मिक परंपराओं में मौजूद पूर्व के अवतारवादी रूझानों का व्यापक रूप से एक साथ मिल जाना है जो हैं:

i) आर्य आक्रमणकारियों के बलिदान संबंधी पंथों तथा ब्राह्मण पुजारियों के श्लोक जो कि वेदों का आधार बने;

ii) शारीरिक इच्छाओं का दमन करके तपस्या करने की पद्धति तथा श्रमण (Sramanas) कहलाने वाले समूहों द्वारा पूर्व भारतवासियों की परंपराओं को जारी रखा जाना किन्तु शीघ्र ही कुछ आर्यों द्वारा उनके रूपान्तरण तथा

iii) आर्यों से पूर्व आत्माओं तथा गाँव की देवियों में विश्वास की मान्यता, जो कि पेड़ों तथा चट्टानों पर निवास करती थीं और कुछ विशेष व्यक्तियों अथवा समूहों को सुरक्षा प्रदान करती थीं।

वे लोग जो कि विष्णु को सर्वोच्च देवता मानकर पूजते हैं, वैष्णव कहलाते है, इसी तरह जो लोग शिव को सर्वोच्च स्थान पर रखते हैं, शैव कहलाते हैं, तथा वे लोग जो कि शक्ति की देवी के भक्त हैं, शाक्त (saktas) कहलाते हैं। प्रत्येक पंथ पुनः शिक्षकों व शिक्षाओं के क्रमों में विभाजित है। भक्ति के प्रमुख स्वरूप भक्तों के विभिन्न मनोदशाओं के अनुरूप विभाजित हैं। आम भावना अथवा भाव को लीला के अंतर्गत एक परिष्कृत मनोदशा अथवा रस में रूपान्तरित किया जाता है अथवा रस की प्रत्येक श्रृंखला किसी खास मानवीय रिश्ते का प्रयोग करती है अथवा भक्ति के उदाहरणों जैसे सेवकों की स्वामी के प्रति अथवा बच्चे की माता-पिता के प्रति अथवा मित्र के प्रति, माता-पिता की बच्चे के प्रति तथा प्रेमिका की प्रेमी

के प्रति आसक्ति को इस्तेमाल करती है। जहाँ भक्ति भाव विभोर लगाव पर बल देती है यह योग से बिल्कुल भिन्न है जोकि अलगाव पर बल देते है। फिर भी भक्ति के अनेक रूप ऐसे भी हैं, जो कि अलगाव की बात करते हैं, जैसा कि भागवत् गीता में उपदेश दिया गया है। धार्मिक तौर पर भक्ति-आन्दोलन अति वैराग्य के मार्ग तथा लोकप्रिय हिन्दू धार्मिकता के बीच में खड़ा है। भक्ति आम तौर पर मोक्ष अर्थात सीमित अस्तित्व से छुटकारा तथा अतीन्नद्रीय परमानन्द में लीन हो जाने की बैरागी संबद्वताओ से सहमति रखती है। बुनियादी चीज है ईश्वर के साथ संवाद।

कुछ भक्तगण अपना पूरा समय व शैली हिन्दू संन्यासियों की तरह पूरे दिन, अपने ईश्वर की प्रार्थना में भजन और कीर्तन करते हुए समर्पित करके रहते हैं। भक्ति लोकप्रिय हिन्दू धर्म की भॉति ही पूजा के मूल अनुष्ठान को अपनाती है जिसमें देवता की आराधना मूर्ति के रूप में फल-फूल व वनस्पति चढ़ाकर की जाती है और जिन्हें पूजा के बाद प्रसाद के रूप में लौटा दिया जाता है जो कि ईश्वर की मर्यादा से भरपूर भौतिक पदार्थ है। इस तरह की पूजा किसी घरेलू पूजास्थल या स्थानीय मंदिर में की जा सकती है। पूजा किसी भी आध यात्मिक तषा मुंडन संबंधी मकसद के लिये की जा सकती है। भक्ति के विशिष्ट अनुष्ठान भी हैं जैसे भजनों व जापों का सामूहिक गायन, ड्रामा, नृत्य तथा जाप तथा विष्णु की शौर्य गाथाओं का उच्चारण।

भक्ति के ये तीन मार्ग भगवान कृष्ण ने अर्जुन को प्रस्तावित किये थे : i) ज्ञान मार्ग; ii) कर्म मार्ग; तथा iii) भक्ति मार्ग

संस्कृत भाषा के शब्द ''भक्ति'' का अनुवाद अक्सर समर्पण के रूप में तथा भक्ति मार्ग शब्द का अनुवाद ''समर्पण मार्ग'' के रूप में किया गया है। भक्ति देवी-देवताओं व मनुष्य के बीच का वह रिश्ता है, जिसे मानव पक्ष द्वारा अनुभव किया गया है। भक्ति के कम से कम तीन प्रमुख प्रचलित रूप हैं; वैष्णव, शैव तथा महाशक्ति के उपासक। इनमें से प्रत्येक पंथ अनेकों मोक्ष की चिन्ता से संबद्ध है जो कि पृथ्वी पर जन्म लेने के बंधनों से छुटकारा दिलाता है। फिर भी ईश्वर के साथ संवाद पर और अधिक बल दिया गया है। पूजा का अनुष्ठान बहुत महत्व रखता है। अन्य तरह के अनुष्ठान भी मौजूद हैं; जैसे भजनों व मंत्रों का सामूहिक जाप, महाकाव्यों का पाठ, पवित्र माला फेरना।

भक्ति का यह आखिरी मार्ग ही है जो कि एक धार्मिक परंपरा का आधार बना हुआ है, जो कि आज दुनिया भर में बरकरार तथा फल-फूल रहा है। इस पंरपरा की मौलिक शिक्षा यह थी कि अपनी आत्मा की मुक्ति के एक मार्ग के रूप में अपने बारे में कुछ भी सोचे बिना अर्थात स्वयं को भूलकर किसी एक ही ईश्वर की छवि पर ध्यान केन्द्रित करते हुए ''प्रेममय समर्पण'' का भाव ग्रहण कर लिया जाए। किसी व्यक्ति की भक्ति का केन्द्र-बिन्दु कोई भी देव माना जाता था। इस ईश्वर को इसलिये उस व्यक्ति का निजी अथवा ''इष्ट देव'' माना जाता था । इष्ट देवता, वह दैवीय शक्ति है, जिसका चुनाव भक्त अपने एक देवता के रूप में करता है और उसी पर व्यक्तिगत आसक्ति का भाव उड़ेल देता है, भक्ति के लिए सर्वाधिक लोकप्रिय ईश्वर कृष्ण ही रहा है और भक्ति की अधिकांश परंपरा का विकास उसी के इर्द-गिर्द हुआ है। खासतौर पर विष्णु के अवतार के रूप में उसका चरित्र तथा गोपियों विशेष रूप से राधा के साथ उसका रिश्ता ही केन्द्रीय महत्व रखता है। गोपियों का नाम उनको दिया गया है जो कृष्ण की पूजा करती थीं और जिनके साथ उन्होंने अपनी अलौकिक क्रीड़ाएँ (लीलाएँ) की थीं। दरअसल, उस प्रेम को ही, जो कि गोपीयाँ कृष्ण से करती थीं, ईश्वर के प्रति व्यक्ति की आस्था का सबसे अच्छा उदाहरण माना गया है। ''स्वयं का परित्याग'' कर देने अथवा अपने ईश्वर की मौजूदगी में सब कुछ भूल जाने का विचार भी ईश्वर के प्रति भक्त की आस्था का एक महत्वपूर्ण अंग माना गया है।

ईश्वर तथा भक्त के बीच के संबंध की इस विशेष अवस्था को विरह भक्ति कहा गया है। विरह भक्ति श्री कृष्ण के प्रति एक खास निजी आस्था को दिया गया एक नाम है, जिसके अंतर्गत भक्त पूर्व देवता से बिछड़ जाने अथवा दूर हो जाने की भावना का अहसास करता है। कृष्ण की भक्ति तथा उसके इर्द-गिर्द पैदा हुआ भक्ति संप्रदाय आठवीं सदी के आसपास दक्षिण भारत में काफी लोकप्रिय हो गया। अब हम भक्ति के स्तंभों पर चर्चा करेंगे। ये हैं;

भक्ति परंपरा के दो महत्वपूर्ण स्तंभ हैं ''प्रेम'' तथा ''मनन करना''। प्रेम, ईश्वर के साथ एक ऐसी भाव-प्रवणता अथवा निकटता का द्योतक है जोकि कोई अपने प्रेमी के साथ अनुभव करता है। यहाँ जिस विचार की प्रस्तुति की है वह ईश्वर के प्रेम में उसी तरह से खो जाना है, जैसे कि वहं कोई प्रेमी हो। इसके साथ ही यहाँ पर उत्पन्न होने वाला संबंध ईश्वर पर निर्भरता का भी हो सकता है। दूसरी तरफ जहाँ तक ''मनन करने'' के पहलू का संबंध है, . भक्ति में दो प्रकार के मनन मौजूद हैं, ये हैं :

i) **सगुण भक्ति (Saguna Bhakti)** जिसके तहत व्यक्ति, अनुशासित व्यवहार के जरिए ईश्वर का मनन, एक अलग अस्तित्व के रूप में करता है;

ii) **निर्गुण भक्ति (Nirguna Bhakti)** जिसके तहत ईश्वर तथा स्वयं व्यक्ति का आपस में विलय हो जाता है और व्यक्ति एवं ईश्वर के बीच का भेद लगभग समाप्त हो जाता है।

10.2.2 भक्ति परंपरा : दक्षिण (The Bhakti Tradition : South)

अब हम दक्षिण भारत में कृष्ण भक्ति परंपरा के विकास का पता लगायेंगे जोकि आठवीं सदी के आसपास देखने को मिली । आठवीं सदी के दौरान तमिल देश में ऐसे व्यक्तियों का उदय हुआ जो कि स्वयं को अलवर कहते थे, अर्थात वे मनुष्य जिसे ईश्वर से भाव-प्रवणता एवं ईश्वरीय ज्ञान प्राप्त हुआ है तथा उन्होंने ईश्वर के साथ अत्यन्त निकटता वाले व्यक्तिगत संबंध होने का दावा किया था। उन्होंने समाज के सभी तबकों से, अपने आन्दोलनों में साधुओं की भर्ती करके तथा एक भाषा के रूप में संस्कृत को प्रयोग में लाने से इन्कार करते हुए, क्योंकि इसकी प्रकृति ब्राह्मणवादी थी, जाति-प्रथा को अस्वीकार कर दिया। इसमें एक महत्वपूर्ण संत हुए, जिनका नाम अलवर था जिन्होंने ईश्वर तथा व्यक्ति की आत्मा की एकरूपता की बात कही। उन्होंने यह भी ज़ोर दिया कि लोगों में असीम एवं गूढ़ आध्यात्मिकता ही मात्र ऐसा तरीका है जो अपने इष्टदेवा के प्रति कोई भी व्यक्ति दर्शा सकता है। उनके अन्य अनुयायी भी थे जैसे यमुनाचार्य तथा नाथमुनि, जिनके प्रयासों से भक्ति आन्दोलन का प्रसार तथा विकास हुआ। अलवरों के अलावा दक्षिण भक्ति आन्दोलन की अभिव्यक्ति 13वीं शताब्दी में रामानुज की रचनाओं के माध्यम से हुई। उसने बुनियादी तौर पर एक निजी देव की उपासना पर बल देने संबंधी योगदान दिया और कृष्ण की भक्ति में भागवत गीता को एक प्रमुख रचना के रूप में देखा। वह सगुण परंपरा का प्रतिनिधित्व करता था।

दक्षिण भारत में 12 अलवर (कवि-संत) हुए और भक्ति परंपरा में उनके योगदान का एक प्रमुख रूप उन भजनों में दिखाई दिया जो कि दैवीय ईश्वर को व्यक्ति की भक्ति को ग्रहण करने वाले के रूप में देखे जाने पर ज़ोर देते थे। दक्षिण भारत में कृष्ण की भक्ति के उदय के अलावा हम वहाँ पर इष्ट देवता के रूप में शिव की पूजा का व्यापक प्रचलन देखते हैं। 12वीं शताब्दी में ही हम वीरशैव अथवा लिंगायतों के बाँधे बाजू वाले पंथ के रूप में इस परंपरा का उदय देखते हैं। इस पंथ का संस्थापक कल्याण रियासत का एक ब्राह्मण प्रधानमंत्री, बसवा था। इस परंपरा ने जाति-प्रथा तथा मूर्ति-पूजा दोनों का ही विरोध किया। मजेदार बात यह है कि हालांकि संस्थापक स्वयं एक ब्राह्मण था लेकिन आंदोलन

ब्राह्मणवाद विरोधी चलाया जा रहा था। लिंगायत पहचान के रूप में चाँदी या पीतल में लिपटी लिंग की छवि गले में पहनने से पहचाना जाता था। यह लिंगम सभी लिंगायतों द्वारा पहना जाता था, चाहे उनका लिंग, आयु अथवा जाति कुछ भी क्यों न हो। लिंगम को पहनना उन सभी लोगों की एकरूपता का प्रतीक था जो कि इष्ट देव के रूप में शिव की पूजा करते थे। यह एक ऐसी परंपरा थी जिसने दो टूक ढंग से उस असमानता के विचार को अस्वीकार कर दिया, जिसे हिन्दू धर्म ने मानव के बीच में प्रतिपादित किया था। इसके दरवाजे सभी जातियों व तबकों के लिए खुले हुए थे और यह भी सभी को शिव लिंग की पूजा में समानता का दर्जा देता था। एक बार पुनः अलवरों की भाँति ही इस परंपरा का अधिकांश भाग कन्नड़ भाषा के गीतों, भजनों तथा कहावतों अथवा वचनों से मिलकर बना था। ये आवश्यक तौर पर ईश्वर के प्रति निजी समर्पण की भक्ति कविताएं थीं और साफतौर पर इन्होंने वैदिक धर्म की महान परंपरा को अस्वीकार किया। ये परंपरागत विश्वासों तथा मंत्रों का मजाक उड़ाती थी और वर्गीकृत विश्वास प्रणालियों, सामाजिक प्रचलनों, वैदिक अनुष्ठानों इत्यादि पर प्रश्न चिह्न लगाती थी।

यदि इसे सरल शब्दों में कहें तो वीरशैववाद तथा लिंगायतवाद एक प्रतिरोध आन्दोलन था और भक्ति व निस्वार्थ रूप में स्वयं को भुला देने के तरीके के जरिये हिन्दू धर्म की रूढ़िवादी तथा बहुदेववादी प्रकृति पर प्रहार किया। इस आन्दोलन ने न सिर्फ कृष्ण की उपासना पद्धति की भाँति, ईश्वर एवं भक्त की एकरूपता पर बल दिया बल्कि भक्त की मंदिर के साथ एकरूपता पर भी ज़ोर दिया। इससे हमें घंटाकर्ण नामक शैव संत के बारे में एक प्रसिद्ध पौराणिक कथा देखने को मिलती है जिसने एक उत्कृष्ट देवता के रूप में शिव की सर्वोच्चता का अहसास करने के पश्चात अपने शरीर को शिव की सेवा में प्रस्तुत किया। यह किसी देवता के समक्ष अपना सर्वस्व न्यौछावर करने का सर्वोच्च बलिदान है। पौराणिक कथा के अनुसार घंटाकर्ण का शरीर एक शिव मंदिर में प्रवेश-द्वार में परिणित हो गया, उसकी बाँहें दरवाजे की चौखटों में बदल गईं तथा उसका सिर मंदिर की घंटी बनगया। समर्पित भक्त की भक्ति का उत्कर्ष इस तरह का था। भक्ति की इस परंपरा की दक्षिण में लोकप्रियता का मुख्य कारण वह सामाजिक बदलाव था जिसे इसने जीवन के सभी क्षेत्रों में समाज के कमज़ोर तथा गरीब तबकों के सामाजिक उत्थान की दृष्टि से महत्वपूर्ण बना दिया था। इसके अलावा चूंकि दक्षिण भारत में भक्ति परंपरा का केन्द्र-बिन्दु जनता की भाषा में भक्ति-गीतों का प्रयोग में लाना था, इसने विविध सामाजिक और सांस्कृतिक स्तरों पर जनता की एकता स्थापित करने में योगदान किया।

10.2.3 भक्ति परंपरा : उत्तर (The Bhakti Tradition : North)

हम यह पाते हैं कि भक्ति परंपरा दक्षिण भारत से प्रारंभ होकर मध्य तथा उत्तरी भारत तक फैल गई। इनमें से प्रत्येक ने वैष्णव तथा शैव दोनों भक्ति परंपराओं में अपने स्थानीय पारंपरिक विश्वासों तथा भक्ति के रूपों को भी जोड़ लिया। इस तरह हम मध्य भारत में, खासतौर से मराठी क्षेत्र में, कृष्ण-भक्ति का भारी प्रभाव देखते हैं। यहाँ पर इसके सबसे ज्यादा प्रसिद्ध संत तुकाराम (1598-1649) हुए। वह तथा उनके अनुयायी ''विटोबा'' अथवा ''बिठाला'' स्वरूपों में कृष्ण की पूजा किया करते थे। यहाँ देखने योग्य मुख्य बात यह थी कि ईश्वर के साथ एकरूपता हो जाना अथवा उसके साथ विलय हो जाने के जरिए स्वयं अपने भीतर से मुक्ति की कामना करना। लगभग 15वीं शताब्दी के आसपास ही कहीं जाकर, अलवरों आध्यात्मिक वंशज वल्लभाचार्य (1479-1531) के उत्तर की तरफ अग्रसर हुए तथा उन्होंने मथुरा क्षेत्र में कृष्ण की उपासना पद्धति में नई जान डाल दी। यह आज तक कृष्ण-भक्ति के शायद सबसे महत्वपूर्ण केन्द्र के रूप में मौजूद हैं। इस काल में भक्ति से संबंधित तीन प्रमुख हस्तियाँ हैं : सूरदास (1485-1563), जिन्होंने कृष्ण में स्वयं अपने विलीन हो जाने

की बात कही, मीराबाई (1500-1550) जिन्होंने ''गिरधर गोपाल'' के रूप में कृष्ण की भक्ति करते हुए मेवाड़ की रानी की अपने हैसियत को ठुकरा दिया।

मीराबाई की भक्ति से हम सभी परिचित हैं। यह विश्वास किया जाता है कि उनके समर्पण की तीव्रता इतनी अधिक थी कि कृष्ण ने उनकी आत्मा को स्वयं अपनी आत्मा में विलुप्त कर लिया था। अन्त में हम इस काल में चैतन्य महाप्रभु (1485-1533) द्वारा निभाई गई महत्वपूर्ण भूमिका को देखते हैं। मथुरा को भक्ति केन्द्र के रूप में स्थापित करने में चैतन्य महाप्रभु ने समर्पण के बारे में ज्ञान होना और सबसे बड़ा दुःख कृष्ण से अलग हो जाने अथवा विरह को बताया है, पुनः उन्होंने यह शिक्षा दी कि प्रत्येक भक्त को कृष्ण के साथ एकाकार होने की अपनी खोज में उसी तरह की प्रवणता वाली भावना को आत्मसात कर लेना चाहिए जो राधा तथा गोपियों की कृष्ण के प्रति थी। हालांकि, आन्दोलन अब सभी सामाजिक समूहों तथा जातियों के लिए खुला था, किन्तु यह पूरी तरह जाति-प्रथा से मुक्त नहीं हो सका।

बॉक्स 10.1 चैतन्य महाप्रभु

चैतन्य महाप्रभु का जन्म 1485 में बंगाल के एक ब्राह्मण परिवार में हुआ था। यह वह समय था जबकि बंगाल लगभग 300 वर्षों तक मुस्लिम नियंत्रण के अधीन रहा था। मुस्लिम शासन के अधीन हिन्दू धर्म की हैसियत घटकर एक रूढ़िवादी जीवनशैली तथा पूजा के दर्जे पर आ गई थी। चैतन्य महाप्रभु ने बचपन में संस्कृत की शिक्षा ग्रहण की। जब वे बड़े हुए तो एक स्कूल में अध्यापक बन गये और उस समय वे भक्ति को अस्वीकार करते थे। धर्म में उनकी कोई दिलचस्पी नहीं थी। हालांकि वे इस तथ्य को नजरंदाज नहीं कर सकते थे कि उनके सभी 8 बड़े भाई बहनों की मृत्यु उनके सामने ही हुई थी। गया के एक पूजास्थल में उनकी भेंट संन्यासी ईश्वर पुरी से हुई और इस भेंट ने उनके जीवन में बदलाव ला दिया। उन्हें रहस्यवादी दृश्य दिखाई देने लगे जिन्हें वे शब्दों में व्यक्त नहीं कर सकते थे। ईश्वर पूरी ने उन्हें एक मंत्र दिया और चैतन्य महाप्रभु कृष्ण के उपासक बन गये।

यहाँ तक कि आज भी हम मथुरा, खासतौर से वृन्दावन में, यह पाते हैं कि किस तरह से लोगों के जीवन, घर, तथा मंदिर में एक बालक के रूप में तथा गोपियों के युवा प्रेमी के रूप में कृष्ण की भक्ति से पूरे तौर पर वे सभी बंधे हुए हैं। मथुरा के निकट इस छोटे से नगर में, लोग उस समय सो कर उठते हैं जब मंदिर में कृष्ण सो कर उठते हैं, वे तभी भोजन करते हैं जब वे भोजन कर लेते हैं, तभी सोते हैं जब वे सोते हैं तथा उनका हर पल कृष्ण के ध्यान में इस तरह से समर्पित है कि वे एक दूसरे का अभिवादन भी 'राधे-राधे' कहकर करते हैं। वे उनके जीवन, ईश्वर के जीवन में इस तरह से लीन हो चुके हैं। उत्तर भारत की यही भक्ति सगुण भक्ति के सबसे अच्छे उदाहरण का प्रतिनिधित्व करती है।

भक्ति आन्दोलन, यहाँ से और आगे उत्तर पूर्व की दिशा में फैला और 16वीं शताब्दी में असम तक पहुँच गया जहाँ के मैथी नामक आदिवासी वैष्णव हैं। वैष्णव परंपरा के अलावा उत्तर में पहुंचने पर हम शिव भक्तिका भी उत्तर भारत में गहरा प्रभाव देखते हैं। खासतौर पर कश्मीर में। इसके, सबसे महान अनुयायी एवं प्रतिपादक अभिनवगुप्त तथा बाद में कुछ कश्मीरी महिला संतों में से एक लल्ला थी। यद्यपि यहाँ शिव-भक्ति के अनेक अनुयायी थे। किन्तु परंपरा की व्याख्याओं का अनुसरण करना उनके लिए कठिन था, फिर भी उनकी संख्या समाप्त नहीं हुई और शिवरात्रि का पर्व कश्मीर में आज भी धूमधाम से मनाया जाता है। इस बात पर पुनः ध्यान दें कि भक्ति परंपरा इतनी लोकप्रिय कैसे बनी। पुनः हिन्दू धर्म के कठोर एवं परंपरावादी चरित्र के चलते, जो कि ईश्वर के समक्ष मानव की असमानता पर

बल देता था और इस तरह देवताओं तथा धर्म तक सभी मनुष्यों के समान रूप से पहुँचने की इजाजत नहीं देता था, भक्ति परंपरा ने एक विकल्प प्रस्तुत किया। यह समर्पण के जरिये पूजा का एक वैकल्पिक मार्ग था, जो कि समाज के सभी वर्गों के लिये खुला हुआ था और उन सभी को ईश्वर के समक्ष समान रूप से पेश करता था तथा देवताओं तक उनकी पहुँच को संभव बनाता था। चूँकि इसने स्थानीय कहावतों, भाषा तथा गीतों का प्रयोग किया, यह जनता के ही बड़े हिस्से तक पहुँच सकी तथा समाज के सभी तबकों को प्रभावित कर सकी। इसने व्यक्ति तथा ईश्वर के बीच के रिश्ते को एक अत्यधिक व्यक्तिगत रिश्ते के तौर पर प्रतिष्ठित किया और बिचौलियों के जरिये पूजा करने की वैदिक पद्धति को अस्वीकार कर दिया। इसके अलावा जाति प्रथा को इसके द्वारा अस्वीकार किया जाना तथा इस प्रथा द्वारा प्रस्तावित असमानताओं को अस्वीकार किया जाना, एक ऐसे मार्ग को प्रशस्त करना था जिसकी अभिलाषा समाज के एक विशाल हिस्से को थी। इस तरह से भक्ति ने दैवीय शक्तियों के साथ संबद्ध होने के एक ऐसे रास्ते को प्रस्तुत किया जो कि व्यक्तिगत, अनोखा तथा संतोषप्रद था।

बोध प्रश्न 1

i) भक्ति क्या है? यह किस तरह से प्रचलित धार्मिक रूझान का एक विकल्प बनी?

.....

.....

.....

.....

.....

.....

ii) विरह, सगुण तथा निर्गुण; अर्थात् इन तीनों प्रकार की भक्तियों का संक्षेप में वर्णन कीजिए।

.....

.....

.....

.....

.....

.....

.....

10.3 सूफीवाद (Sufism)

भक्ति की बुनियादी शिक्षाओं की जाँच कर लेने के बाद तथा यह जान लेने के बाद कि किस तरह से इसने समर्पण अथवा धार्मिक पूजा के लिये एक नये रास्ते का निर्माण किया, अब हम भारतीय उपमहाद्वीप पर इस्लाम धर्म के प्रभाव तथा खासतौर पर इसके द्वारा भक्ति परंपरा पर डाले गये असर पर विचार करने के लिये अग्रसर हो सकते हैं। इस प्रभाव की एक उपशाखा के रूप में हम भारत में सूफी आन्दोलन की भूमिका को पाते हैं।

ऐतिहासिक रूप से, 10वीं शताब्दी की शुरुआत ने भारी आक्रमणों को देखा। वही वह समय था जबकि महमूद गजनवी ने 17 बार भारतीय उपमहाद्वीप पर धावा बोला। 16वीं शताब्दी के आरंभ में, हम सभी जानते हैं कि मुगलों ने भारत पर आक्रमण किया। 17वीं शताब्दी के उतरार्द्ध में जाकर ही हिन्दुओं ने प्रति-आक्रमण शुरू किया। खासतौर से मराठा-शासक शिवाजी द्वारा किये गये संघर्ष के दौरान ही हिन्दू धर्म की नैतिक शक्ति को बल मिला तथा भक्ति परंपरा, इस्लाम के प्रभाव की एक सहज प्रतिक्रिया के रूप में उभर कर सामने आई। पुनः दो भिन्न सामाजिक एवं सांस्कृतिक परंपराओं के बीच संपर्क, अन्योन्यक्रिया तथा संश्लेषण खासतौर पर हिन्दुओं व मुसलमानों के सामाजिक रीति रिवाजों, परंपरा तथा प्रचलनों के स्तर पर हुआ। इसी दौरान हम यह पाते हैं कि सूफीवाद की इस्लामी, रहस्यवादी एवं परमानन्द दायक परंपरा ने भक्ति संतों को अत्यधिक प्रभावित किया। इस प्रभाव की प्रकृति को समझने के लिये, आइये हम संक्षेप में इस बात पर विचार करें कि सूफीवाद क्या था।

10.3.1 सूफीवाद क्या है? (What is Sufism?)

शुरू में सूफीवाद मैसोपोटामिया, अरेबिया, ईरान तथा आधुनिक अफगानिस्तान में विकसित हुआ। 8वीं शताब्दी के अंत तक इसने एक औपचारिक स्वरूप ग्रहण कर लिया। शुरू से ही उलेमाओं व रहस्यवादियों के बीच मतभेद उभर आये थे। वे रहस्यवादी धर्म के मर्म तक पहुँचने का दावा करते थे जोकि हृदय पर निर्भर था। सूफी तथा भक्ति परंपराओं की विशेषता यह है कि वे धार्मिक पाठ्यसामग्री व सरकारी सत्ता के प्रति सार्वभौमिकता का भाव रखती हैं, तथा प्रार्थना के बाहरी अनुष्ठान का विरोध करती हैं। सूफी ईश्वर के साथ प्रत्यक्ष रिश्ते का ध्येय लेकर चलते हैं तथा इस तरह उनकी मूल विशेषताओं के अंतर्गत हिन्दूधर्म सहित विभिन्न स्रोतों से उक्तियों को शामिल किया गया है।

रीतू दीवान ने इंगित किया है ('प्रेम का धर्म' द संडे टाइम्स आफ इंडिया, 21 नवम्बर 93) कि 12वीं शताब्दी के मुगल आक्रमण के परिणामस्वरूप अनेक सूफियों ने भारत में शरण ली, खासतौर से मुलतान, पंजाब और सिंध में । महानतम् सूफी रहस्यवादियों में से एक मौलाना जलालुद्दीन रूमी (1207-1273) भारतीय लोक कथाओं से बहुत अधिक प्रभावित हुए थे और कृष्ण की बाँसूरी पर समर्पित एक कविता भी लिखी थी। उन्होंने मौलवी सूफी प्रथा की स्थापना की, जिसमें संगीत व नृत्य आध्यात्मिक विधि-विधान में शामिल थे। राधास्वामी पंथ के संस्थापक सोमी जी महाराज, रूमी से बहुत प्रभावित. हुए थे और अक्सर उनकी उक्तियों का हवाला दिया करते थे। गुरु नानक से भी रूमी ने प्रेरणा ली थी। रूमी तथा बाबा फरीद की रचनाओं (1173-1265) को कबीर की रचनाओं के साथ गुरु ग्रंथ साहिब में शामिल किया है।

गुरु नानक को, हिन्दुओं का गुरु तथा मुसलमानों का पीर कहा जाता था। 16वीं शताब्दी का अंत होने तक भक्ति आन्दोलन समूचे उत्तरी भारत में फैल गया और इसके परिणामस्वरूप हिन्दू रहस्यवादियों व सूफियों के सिद्धान्तों ने एक-दूसरे पर काफी प्रभाव डाला। कबीर की निम्नलिखित उक्ति इसे चित्रित करती है :

मुसलमानों ने शरीयत को स्वीकार किया है
हिन्दू वेद और पुराणों को मानते हैं,
लेकिन मेरे लिये दोनों धर्मों की पुस्तकें व्यर्थ हैं।
(कबीर 1440-1518)

सूफी लोग, धर्म में बाहरी कर्मकांडों के भी विरोधी थे। प्रार्थना तथा उपवास को दान के कार्यों से नीचा मानते थे और जेहाद कोई बाहरी युद्ध नहीं बल्कि मनुष्य की स्वयं अपनी

कमजोरियों के विरूद्ध संघर्ष का नाम था। शाह अब्दल लतीफ तथा सचल सरमस्त जैसे कुछ सूफियों ने जनता का आह्वान किया कि वह ''मुल्लाओं पर हमला'' कर दें।

बंगाल में चौतन्य का प्रभाव जनता में व्यापक स्तरों पर महसूस किया गया, खासतौर से बावल (Baul) आन्दोलन पर। मुसलमान बावलों ने सूफी परंपरा को अपनाया तथा हिन्दू बावलों ने वैष्णव धर्म को। ये दोनों परंपराएँ निम्नलिखित उद्धरण में अभिव्यक्त हुईं :

तुम गया, बनारस और वष्न्दाबन गये हो
और अनेक नदियों, जंगलों तथा
तीर्थ स्थानों का दौरा कर चुके हो,
लेकिन क्या इन सभी में तुम्हें उसके
दर्शन हुए, जिसके बारे में तुमने सुना था?

रूमी तथा हाफीज (मृत्यु 1389) के सूफी साहित्य ने राजा राममोहन राय, देवेन्द्र नाथ टैगोर तथ रवीन्द्र नाथ टैगोर को प्रभावित किया। हालांकि सूफी साहित्य को लिखे हुए कई वर्षों का समय बीत चुका है, फिर भी उसमें ताजगी बनी हुई है :

क्या एक ईश्वर पीपल के पेड़ में और
दूसरा बबूल के पेड़ में वास करता है?
यदि इस्लाम को अल्लाह ने पैदा किया
तो काफिर को पैदा करने वाला कौन है?
यदि काबा भगवान का घर है
तो मंदिरों में दोष निकालने से क्या लाभ?
मंदिर और मस्जिद दोनों को एक ही
चिराग रोशन करता है।
(सूफी भाई दलपत राम 1768-1842)

इस तरह हम देखते हैं कि भक्ति व सूफी आन्दोलनों ने एक दूसरे पर असर डाला था।

सूफीवाद इस्लाम के आध्यात्मिक आयामों को वरीयता देता है। यह दैवीय ज्ञान में विश्वास करता है और इसे पवित्र संपर्क तथा ईश्वर के साथ एकता के व्यक्तिगत अनुभव का स्रोत मानता है। इसके चलते यह अहसास प्रबल होता है कि केवल ईश्वर ही है जिसे पूजा जाना चाहिये। यह सूफीवाद का मूल मंत्र है। यद्यपि रूढ़िवादी इस्लामी मुल्ला यह महसूस करते हैं कि ईश्वर के साथ एकरूप हो जाने की यह इच्छा ही इस्लामी सिद्धान्तों से घनिष्ठ रूप से जुड़ी हुई है। दोनों परस्पर एक दूसरे पर निर्भर हैं। इस रिश्ते को स्पष्ट करने के लिए अखरोट के फल और आचरण की उपमा दी गई हैं। दोनों में से कोई भी शायद एक दूसरे के बिना नहीं रह सकता। एक अन्य उदाहरण यह है कि इस्लामी सिद्धान्त एक वृत की परिधि की तरह है जिसके केन्द्र में अंतिम सत्य (हकीकत) छुपा है। सूफीवाद इला सिद्धान्त और अंतिम सत्य के बीच सूत्रधार है।

सूफीवाद की व्याख्या निम्नलिखित तीन बुनियादी धार्मिक रुखों के जरिये की जा सकती है:

i) इस्लाम

ii) ईमान

iii) इहसान

इस्लामः अल्लाह की मर्जी के सामने समर्पण का रुख है।

ईमानः इस्लाम की शिक्षणों में दृढ़ आस्था का द्योतक है।

इहसानः अल्लाह को इबादत करना है, भले ही उसे देखा न जा सके।

सूफीवाद इस्लाम की आरंभिक अवस्था से इहसान की अंतिम अवस्था तक भक्त की आध्यात्मिक प्रगति।

भारत में इस्लाम के विस्तार के साथ ही इसने अपने आवरण में मठवाद की प्रणाली तथा सामुदायिक जीवन की एक परिभाषित शैली को समेट लिया। रहस्यवादियों को हालांकि किसी भी हालत में एक परिभाषित एवं संगठित जीवन बिताने पर मजबूर नहीं किया जा सका। नवीं शताब्दी तक, ये रहस्यवादी थे जिन्होंने अब अपना संप्रदाय बना लिया था और सामुदायिक जीवन की एक निश्चित शैली को अपना लिया था, खासतौर से बनाई गई एक ऊनी पोशाक पहनने लगे जिसे सूफी कहा जाता है और इस तरह वे सूफी कहलाने लगे। सूफी हालांकि मुसलमान हैं किन्तु वे सर्वेश्वरवादी रहस्यवादी माने जाते हैं। यही रूढ़िवादी इस्लाम से, उनका बुनियादी भेद और हिन्दुओं के भक्ति आन्दोलन से उनकी समानता है।

सूफीयों ने कुरान का अनुसरण किया और अपनी कथनी, करनी तथा अपनाए गए रास्ते के जरिये अपने मकसद को उजागर करने की कोशिश की। इस रास्ते का समान रूप से अनुसरण अक्सर विभिन्न रहस्यवादियों ने भी किया और वे तारिकाह (Tariqah) अथवा सूफीवादी कहलाये। दुनिया तथा अपनी निजी संपत्तियों व इच्छाओं को ठुकराते हुए या फिर धैर्य, विनम्रता तथा सेवा भाव अपनाने के जरिये निस्वार्थतता का मार्ग अपनाना, जो कि सीधा खुदा तक ले जाता है, सूफी होने की आवश्यक शर्त थी। सूफीयों के पास उनका एक अनोखा उपाय भी था जिसके जरिये वे ऐसी मानसिक अवस्था प्राप्त कर लेते थे जिसमें वे जाप किया करते थे। वे इसे धिक्र (dhikr) कहा करते थे।

इसकी सबसे सरल अवस्था ईश्वर के विचार में पूरे तौर पर मग्न होकर तथा स्वयं को भुलाकर, बार-बार अल्लाह के नाम को दोहराना है। यदि हम शिक्षाओं की गहन परीक्षा करें तो हम यह देख सकते हैं कि इस तरह से धिक्र का विचार जो सूफी विचारधारा का केन्द्र बिन्दू हैं, खासतौर से निर्गुण परंपरा के तहत व्यक्ति की मुक्ति के लिये, इष्ट देवता पर ध्यान केन्द्रित करने के भक्ति परंपरा के विचार से कितना मिलता जुलता है। इस तरह सूफीवाद ने मुख्यतः रहस्यवाद का प्रतिपादन किया और इसी पर उन्होंने अपने धार्मिक आन्दोलन की बुनियादी धर्मशास्त्रीय प्रस्थापनाओं को आधारित भी किया। सूफियों द्वारा धार्मिक भावों को तीव्र बनाने के लिये तैयार किया गया एक प्रमुख नुस्खा संगीत तथा गीतों अथवा समा (Sama) को सुनने का था। ये गीत लोगों को भाव विभोर बना देने में सक्षम थे। गीतों का विषय प्रेम था, जो कि अक्सर दीवाना हुआ करता था। उन्हें सुनकर स्पष्ट रूप से यह भेद किया जाना कठिन था कि जिस प्रेम की बात की जा रही है वह मानवीय प्रेम है अथवा दैवीय। एक बार फिर वह भक्ति परंपरा में भक्त और ईश्वर के बीच के उस प्रेम में मिलता जुलता है, जिसकी अभिव्यक्ति कृष्ण के लिये गोपियों द्वारा की गई थी।

हम यह पाते हैं कि सूफी को विभिन्न तरीकों से परिभाषित करने के प्रयास किये गये हैं। आमतौर पर यद्यपि इस बात पर सहमति थी कि सफी में अलौकिक, सामाजिक एवं परोकारवादी गुण मौजूद थे। इसके अलावा सूफी विचारधारा में हम विभिन्न प्रभावों को भी पाते है, जैसे कि मुस्लिम एक कृतिवादी विचार का विकास अथवा ग्रीक तथा भारतीय दर्शानों का प्रभाव । साथ ही हम यहाँ उन राजनीतिक, सामाजिक एवं बौद्धिक अवस्थाओं को भी शामिल कर सकते है जिन्होंने रहस्यवाद के विकास में योगदान किया। सूफी

अनुशासन अथवा मुरीद को अपनाने के बारे में बहुत सख्त थे। जैसे-जैसे उनके अनुयायियों की संख्या बढ़ती गई, अनेक सूफी शिक्षकों अथवा शेखों तथा पीरों के रूप में जाने लगे और सूफीवाद के भीतर व्यवस्थाएँ कायम होने लगीं। चार प्रमुख व्यवस्थाएँ जो कि उभर कर आई वे थीः क) कादिरी, ख) सोहरावार्दी, ग) चिश्ती, तथा घ) नक्शबंदी

10.3.2 भारत में सूफीवाद का प्रसार (Spread of Sufism in India)

सूफीवाद भारत में अरेबिया, मैसोपोटामिया एवं ईरान से प्रवाहित हुआ। हमें भारत के विभिन्न हिस्सों में सूफी शिक्षाओं का प्रसार करते हुए विभिन्न संतों के उदाहरण देखने को मिलते हैं। उनमें से कुछ नाम इस प्रकार हैं, शेख मोइनुद्दीन चिश्ती जो स्वयं अजमेर में बसे और शेख निजामुद्दीन औलिया जिनकी शिक्षाएं तथा अनुयायी पूरे भारत भर में फैल गये।

जहाँ तक भारत में सूफीवाद के विस्तार का प्रश्न है, हम देखते हैं कि इसका चरित्र यहाँ के वातावरण के अनुकूल रूपान्तरिक हो गया। इस तरह अलौकिकता के पहलू को अनदेखा किया गया और शिष्यों को व्यक्तिगत निर्देश दिये गये। सभी सूफी हालांकि शिष्य नहीं रखते थे। जो रखते थे, वे शेख कहलाते थे। शेख को शिक्षक होने के अलावा संरक्षक, मित्र, साथी तथा धर्मोपकारी अथवा वली के रूप में भी माना जाता था। यह भी विश्वास किया जाता था कि उनके पास दैवीय शक्तियाँ अथवा करामॉ भी हुआ करते थे। शेख अथवा पीर शिष्यों अथवा मुरीदों के आध्यात्मिक मार्गदर्शक लोग किसी बीमारी का इलाज करने अथवा किसी मनोकामना को पूरा करने के लिए, उनको दैवीय-शक्तियों के प्रयोग में लाये जाने की आकांक्षा लेकर आते थे। यहाँ तक कि आज भी हम देखते है कि अनेक श्रद्धालु जो कि किसी पीर की समाधि अर्थात दरगाह पर आते हैं वे किसी मनोकामना की पूर्ति अथवा आशीर्वाद लेने के लिए आते है।

हम यह उल्लेख कर चुके हैं कि सूफियों के बीच चार प्रमुख व्यवस्थाएँ मौजूद थीं। अपनी शिक्षाओं पर बल देने तथा भारत में इनके प्रचार-प्रसार की सीमा की दृष्टि से हम इनमें से प्रत्येक को अन्य से भिन्न पाते हैं। हालांकि सभी चारों व्यवस्थाओं ने शरीयत को ही आध्यात्मिक मार्गदर्षिका माना है। सभी की मान्यता यह रही है कि सूफी को जीवन-जगत की भौतिक वस्तुओं से दूर रहना चाहिए। समय-समय पर प्रत्येक व्यवस्था के समर्पित शिष्य हुए है। जिन्होंने आगे चलकर वह स्थान हासिल किया है जिस पर पहुँचकर वे स्वयं अपने शिष्य बना पाने में समर्थ हुए हैं। इन्हें खलीफा कहा जाता था। इन खलीफाओं ने अपनी व्यवस्था का प्रसार-प्रसार करने में महत्वपूर्ण भूमिका अदा की थी।

इन चारों व्यवस्थाओं में से सोहरावर्दी सबसे ज्यादा दकियानूस थे और उन्होंने उत्तर-पश्चिम भारत में सूफीवाद के प्रसार में नेतृत्वकारी भूमिका अदा की। वे यह विश्वास करते थे कि अपने कर्तव्यों का बेहतर ढंग से निर्वाह करने के लिए उन्हें उस समय की राजनीतिक सत्ता के साथ मधुर संबंध बनाकर रखने होंगे।

इन व्यवस्थाओं में से, चिश्ती सूफियों को ही सबसे अधिक माना जाता है। वे समूचे देश में फैल गये और उनके प्रमुख शेख निजामुद्दीन दिल्ली में बस गये तथा इस व्यवस्था को एक कीमती चरित्र प्रदान किया। चिश्ती लगातार इस बात पर ज़ोर देते रहे कि राजनीतिक सत्ता एक ऐसा प्रभाव है जिससे बचा जाना चाहिये। 1325 ई. में निजामुद्दीन की मृत्यु हो जाने तथा उनके स्थान पर 1356 में नसीरूद्दीन के आसीन हो जाने के समय तक एक आध्यात्मिक साम्राज्य का बनना शुरू हो गया था। यह शेख निजामुद्दीन औलिया के व्यक्तित्व के साथ अपने चरमोत्कर्ष पर पहुंचा। इस समय तक चिश्ती व्यवस्था बिहार तथा बंगाल तक प्रसारित हो चुकी थी तथा राजस्थान में यह और भी पुरानी व्यवस्था बन चुकी थी जो कि

1190 में अजमेर में ख्वाजा मुइनुद्दीन चिश्ती ने शुरू की थी। इस व्यवस्था का दक्कन में प्रसार शेख गेसू-दराज द्वारा किया गया।

बॉक्स 10.2 सूफ़ी संत

सूफीवाद इस्लाम की एक सृजनात्मक अभिव्यक्तियों में से है। यह एक रहस्यवादी पंथ है जो कि इस्लाम के बाहर रहकर विकसित हुआ। सूफीवाद रहस्यवादी चिश्ती की गुहार करता है। जिन अनेक सूफी संतों ने सूफीवाद के विकास का दायित्व अपने ऊपर लिया उनमें हसन अल-बसवी, इब्राहम, इब्ने अधम, राजिबाती अदाविधाज, धू उ-ल नन अल मिसरी शामिल हैं। इनमें से प्रत्येक संत ने अपनी तरह से सूफीवाद का विकास किया। उदाहरण के लिय अल-हलाज जब किशोरावस्था में थे तभी से वे सूफी बन गये। वे बीस वर्षों तक एकांत में रहें और बहुत से गुरूओं से उन्होंने शिक्षा प्राप्त की। उनकी बुनियादी शिक्षाएँ नैतिक सुधार तथा प्रेम के साथ तीव्र एकरूपता की थी। उनकी रहस्यवादी उक्ति थी ''आना-उ-ल-हाग'' (मैं दैवी सत्य हूँ) अल-हलाज को बदनाम करने वाले लोगों ने उनका सिर काटकर तथा जलाकर उन्हें मौत के घाट उतार दिया किन्तु वे इस विश्वास के साथ कि शायद खुदा की यही मर्जी है, इज्जत और षान के साथ मृत्यु को प्राप्त हुए।

(*एनसाइक्लोपीडिया ऑफ रिलीजन*)

इस बात पर गौर करना जरूरी है कि व्यवस्था तथा अनेक शेखों की व्यक्तिगत समझ की भिन्नताओं के चलते, अनुयायियों के कोई एक संगठित मुस्लिम समुदाय का निर्माण नहीं हो सका। इसकी जगह प्रत्येक व्यवस्था के अपने समर्पित अनुयायी थे जिन्होंने आपस में मिलकर भाईचारा कायम कर लिया था आगे चलकर सूफीवाद ने अपनी आध्यात्मिक तीव्रता खो दी और उसका चरित्र समाज सेवा करने वाला जैसा हो गया। 14वीं शताब्दी के अंत तक, हिन्दू धर्म ने सूफियों के बीच अनुक्रिया का आह्वान कर दिया। हिन्दी गीतों तथा भाषा के समर्पण भाव के चलते सफी तथा हिन्द एक दूसरे के निकट आये। सांस्कृतिक स्तर पर दोनों तरह के लोगों के बीच मेलजोल बढ़ा। दरअसल हम देखते हैं कि एक ऐसी समान पृष्ठभूमि तैयार हुई जिसके तहत हिन्दुओं व मुसलमानों के बोधात्मक मूल्यों को परस्पर स्वीकृति प्रदान किये जाने को एक-दूसरे द्वारा स्वीकार किया जाने लगा।

संस्कृतियों की परस्पर अदला-बदली के बारे में आगामी अनुभागों के तहत चर्चा की जाएगी जो कि खासतौर पर सूफीवाद तथा भक्ति पंरपरा के मिलन से संबद्ध है।

10.4 सूफीवाद एवं भक्ति : एक तुलना (Sufism and Bhakti : Comparison)

भारतीय पषश्ठभूमि में, सूफीवाद की परंपरा का क्या महत्व है, इस बात की रूपरेखा प्रस्तुत कर लेने के बाद, आइए, अब हम भक्ति परंपरा में सूफीवाद की भूमिका पर विचार करें।

आपने शायद पहले ही यह गौर किया होगा कि सूफियों द्वारा दी गई शिक्षाओं में से बहुत सी शिक्षाएँ ईश्वर पर ध्यान केन्द्रित करने तथा भक्ति संगीत व गीतों के महत्व की भक्ति शिक्षाओं से. काफी मिलती-जुलती थी। यह माना जाता है कि इन दोनों के बीच की अन्योन्याक्रिया के चलते ही मध्यकालीन रहस्यवाद के निर्माण का मार्ग प्रशस्त हुआ जो कि संकीर्ण अथवा पुराणपंथी प्रथाओं से मुक्त था और जिसने खासतौर पर जाति-प्रथा के प्रचलन तथा उत्पीड़न का विरोध किया। जैसा कि कहा गया है कि भारत में आने वाले पहले सूफी संत थे ख्वाजा मोइनुद्दीन चिश्ती, जो 1193 में दिल्ली आये तथा अजमेर के पुष्कर नामक

स्थान में जाकर बस गये। उनके अनुयायी हिन्दू व मुसलमान दोनों थे। हम सभी अजमेर में उनकी दरगाह पर होने वाले उर्स (Urs) से परिचित हैं, जिसे असंख्य अनुयायी आज भी प्रमुख तीर्थ स्थल की मान्यता देते हुए आते हैं। जैसा कि उल्लेख किया जा चुका है, ये सूफी इस्लामी रहस्यवादी थे, जिन्होंने ईश्वर के प्रति तीव्र व गहन प्रेम के माध्यम से अमरत्व प्राप्त करने के मार्ग की गुहार की। सूफियों की शिक्षाओं ने न केवल अनुयायियों को ही बल्कि अनेक ऐसे भक्ति परंपरा के संतों को भी अत्यधिक प्रभावित किया जो कि अपने भीतर सूफी तथा भक्ति दोनों की शिक्षाओं का समावेश करना चाहते थे। 15वीं-16वीं शताब्दी के इसी तरह के दो उल्लेखनीय संत थे कबीर तथा गुरु नानक । हम संक्षेप में मध्यकालीन रहस्यवाद के विकास में उनकी भूमिकाओं पर विचार करेंगे।

10.4.1 मध्यकालीन रहस्यवाद का विकास (Growth of Medieval Mysticism)

मध्यकालीन रहस्यवाद के विकास में एक महत्वपूर्ण योगदान रामानन्द (1370-1440) ने किया था। जो कि स्वयं रामानुज के अनुयायी थे। उन्होंने जातिगत विभाजन को चुनौती दी, पारंपरिक समारोहों पर सवालिया निशान लगाये, तथा ज्ञान, समाधि अथवा योग तथा समर्पण अथवा भक्ति के हिन्दू दर्शन को स्वीकार किया। उनके अनेक अनुयायी थे जिनमें से 12 अधिक महत्वपूर्ण और प्रसिद्ध हुए जो नीची जातियों से आये थे। इन शिष्यों में, सबसे ज्यादा प्रसिद्ध कबीर हुए, जो कि एक मुसलमान जलाहे के पुत्र थे। यह माना जाता है कि यद्यपि उन्होंने शुरुआती जीवन में ही मुस्लिम विश्वासों का त्याग कर दिया था किंतु उन्होंन इस्लाम के एक-कृतिवाद को दृढ़ता से अपनाये रखा तथा जाति-प्रथा का विरोध करते रहे। वे धर्म को व्यक्ति का निजी विषय मानते थे, तथा इसे मानव, ईश्वर तथा उसके शिक्षक अथवा गुरु के बीच का रिश्ता मानते थे। उन्होंने सूफी तथा भक्ति परंपराओं में से दोनों के तत्वों को आत्मसात किया और यह दावा किया कि अल्लाह और राम एक ही हैं।

चूँकि वे आम जनता तक पहुँचने की कोशिश कर रहे थे, अतः उन्होंने बातचीत की भाषा के रूप में बोली अथवा उसके सरल मिले जुले रूप का प्रयोग किया। उन्होंने व्यक्ति के जीवन में भौतिक तथा आध्यात्मिक दोनों तरह की चीजों के महत्व पर बल दिया। उनके अनुयायिया में हिन्दू व मुसलमान दोनों शामिल थे और वे संकीर्णता से परे थे, यद्यपि संभवतः उनके हिन्दू अनुयायियों की तादात अधिक हो सकती है। कबीर के जीवन तथा कृतित्व की अधिकांश जानकारी उनके द्वारा रचित दोहों अथवा साखियों से प्राप्त हुई है। ये अनिवार्य तौर पर संगीत के सुरों में ढले भजन और गीत हैं। इस बात पर काफी विवाद हुआ है कि इनमें से कितने दोहे स्वयं कबीर ने लिखे तथा कितने उनके अनुयायियों अथवा कबीर पंथियों ने लिखे। इस तरह कबीर से संबद्ध कुछ कहावतों की वैधता पर संदेह किया जाता रहा है। यह माना जाता है कि उनमें से अनेक की रचना उनके अनुयायियों द्वारा की गई थी। ऐसा माना जाता है कि इन दोहों को, अक्सर सूफी संतों ने भी अपने समा (sama) में शामिल कर लिया।

कबीर के अनुयायियों में दादू (1544-1608) प्रमुख थे, जो कि स्वयं भी मुस्लिम परिवार से थे। उन्होंने विश्वासों की एकता स्थापित करने की मांग उठाते हुए महत्वपूर्ण योगदान किया और ब्राह्मण संप्रदाय की स्थापना की जिसमें ईश्वर की पूजा अनुष्ठानों व दकियानूसी रिवाजों के बगैर हुआ करती थी। एक रहस्यवादी के रूप में उन्होंने विश्व की सुन्दरता के विचार को सामने लाकर योगदान किया जिसे एक वैरागी अथवा एकान्तवासी बनकर नहीं बल्कि एक भरा पूरा जीवन जीकर तथा उसकी अनमोल देनों का आनन्द लेकर ही प्राप्त किया जा सकता है।

कबीर के समकालीन ही हम पंजाब के गुरु नानक (1469-1538) द्वारा किए गए योगदान देखते हैं। कबीर की तुलना में उनके काल तथा मूलस्थान के बारे में हमारे पास निश्चित जानकारी है। कबीर की भाँति वे भी एक एकेश्वरवादी थे और जाति-प्रथा के घोर विरोधी थे। उनके अनुयायी, सिक्ख, एक सुगठित संप्रदाय के रूप में संगठित हो गये। उनकी शिक्षाएँ व रचनाएँ तथा अनुवर्ती गुरुओं की शिक्षाएँ व रचनाएँ पाँचवे गुरु अर्जुनदेव द्वारा, सिक्खों के पवित्र ग्रंथ के रूप में संकलित की गईं, जिसे आदि-ग्रंथ कहा जाता है। सिक्खों ने एक भक्ति पंथ का प्रतिनिधित्व किया, जिसमें उनकी भक्ति को गुरूवाणी के रूप में गाया जाता था। गुरु नानक की धार्मिक कृतियों में, हम यह पाते हैं कि सूफी प्रभाव सर्वश्रेष्ठ तत्वों को उसी तरह से शामिल कर लिया गया है जिस तरह उनकी शिक्षाओं में भक्ति व सूफी प्रचलनों का प्रतिबिंबन हआ है।

10.4.2 सूफी भक्ति अन्योन्यक्रिया (Sufi-Bhakti Interaction)

सूफी एवं भक्ति परंपराओं के बीच यह अन्योन्यक्रिया कबीर बनानक के जीवन को एक खास तरीके से महकाने के लिये है। हम यह पाते हैं कि कबीर, सूफियों के साथ न सिर्फ उनकी रचनाओं की रहस्यवादी प्रकृति की दृष्टि से ही बल्कि विचारों के गठन के स्तर पर भी जुड़े हुए हैं। गुलाम सर्वर लाहौरी द्वारा रचित खाजीनत अल असफिया मैं हम पाते हैं कि कबीर की पहचान सही अथवा गलत एक सूफी के तौर पर की गई है और उन चिश्तियों से जुड़ा माना गया है। हाल के वर्षों में हालांकि विद्वानों ने तर्क पेश किया है कि यह कालक्रम की त्रुटि दर्शाता है। इन रचनाओं में यह दर्शाया गया है कि वे अनेक सूफी केन्द्रों में गये थे और यहाँ तक कि उन्होंने सूफी सन्तों के साथ वाद-विवाद भी किया था। हालांकि उनके दोहों ने जो उल्लेखनीय सम्मान का दर्जा प्राप्त किया, उसे सभी स्वीकार करते है। यह भी माना जाता रहा है कि गुरु नानक ने भी सफी शिक्षकों अथवा शेखों से वाद-विवाद किया था, किन्तु विद्वानों द्वारा उनमें से मुलतान के निकट पाकपटन के शेख इब्राहम के साथ हुए एकमात्र वाद-विवाद को सही माना गया है।

हालांकि अधिकांश मोर्चों पर सूफी रहस्यवादियों तथा हिन्दू सतों के बीच संपर्क से सम्बन्धित दस्तावेज विरोधाभास से भरे हए हैं। हालांकि सूफियों तथा संतों के बीच परस्पर अदलाबदली का सबसे अधिक संतोषजनक क्षेत्र जिस पर विचार किया जा सकता है उनकी कविताओं तथा भक्ति गीतों की कथावस्तुओं में देखा जा सकता है, खासतौर पर भक्त, ईश्वर तथा शिक्षक की बीच पाये जाने वाले 'प्रेम के रिश्ते' की तरफ दोनों परंपराओं के रुख में जो कि दोनों परंपराओं का केंद्र बिन्दु है। इस तरह, दोनों परंपराओं में हम देखते हैं कि भक्त के दर्द तथा दुखों का दैवीय शक्तियों के साथ उसका साझा रिश्ता रहा था। यह दुख जिसे हमने पूर्व में विरह का नाम दिया है, जो कि व्यक्ति का ईश्वर को प्रेमी के रूप में देखता है कबीर की रचनाओं में भी देखने को मिलता है। विद्वान भक्ति के इस विरह की तुलना सूफियों के इश्क से करते हैं जिसकी अभिव्यक्ति विरह के माध्यम से नहीं बल्कि दर्द के जरिये हुई है। यह एक ऐसे अनुभव की ओर ले जाता है, जिसे आतिश कहा जाता है, जो कि अग्नि अथवा विरह में अपनी आत्मा को जला डालने के अनुभव से मिलता-जुलता है। कबीर के दोहों में प्रेम, विरह तथा दुख के भावों को सूफी कविताओं में भी प्रकट किया गया है। कबीर की निगुर्ण भक्ति तथा सूफी परंपरा, दोनों ही इस विचार को सामने रखती हैं, कि ईश्वर तथा भक्त के बगैर कोई भक्ति संभव ही नहीं है। दरअसल भक्ति परंपरा के एक अन्य क्षेत्र में भी सूफी प्रभाव देखा जा सकता है। यह भक्ति संतों के बारे में लिखी गई जीवनियों के संदर्भ में है। यहाँ लिखने की शैली में सूफी परंपरा का प्रभाव दिखाई देता है। संतों के जीवन सम्बन्धी इन जीवनियों को लिखने की परंपरा 15वीं शताब्दी तथा उससे भी पहले से सूफी परंपरा में मौजूद थी।

10.4.3 भक्ति-सूफी शिक्षाएँ (Bhakti-Sufi Teachings)

यह याद रखना जरूरी है कि सूफी तथा भक्ति संतों के बीच अनुपूरक संबंध थे और सूफी भी भक्ति परंपरा से प्रभावित हुए थे। इस तरह, समर्पण की विधि तथा उसकी अभिव्यक्ति की दृष्टि से इस प्रमुख समानता के बावजूद, हम यह पाते हैं कि सूफी परंपरा ने भी शाह करीम तथा शाह इनायत बपने संतों को 17वीं शताब्दी के बाद से पैदा किया जिनकी शिक्षाओं में अल्लाह अथवा राम अथवा हरि के रूप में देवताओं के बीच बहुत कम भेद किया गया, जो कि कबीर ने जो कुछ कहा उसी से मिलता-जुलता है तथा भक्ति परंपरा के प्रभाव का ही द्योतक है।

उपर्युक्त भाग में हमने यह दशाने का प्रयास किया कि किस तरह से मध्यकालीन रहस्यवाद में ने भक्ति तथा सूफीवाद की हिन्दू व मुस्लिम परंपराओं के बीच कुछ समन्वयवाद को रेखांकित किया था। ये दोनों समर्पण भाव तथा समाज के सभी तबकों के लिये खुलेपन की प्रकृति में काफी कुछ समानता दिखाती है, जिसकी वजह से दोनों अपेक्षाकृत अधिक समतावादी बने। कबीर तथा नानक के जीवन पर सूफी विचारधारा का प्रभाव बहुत साफ तौर पर दिखाई देता है। गुरु नानक ने अपनी अनेक यात्राओं के दौरान सूफियों की पौशाक पहनी थी, ऐसा माना जाता है। दरअसल, गुरुवाणी की भक्ति तथा सूफी शिक्षाओं को आपस में मिलाने का उनका प्रयत्न इतना उल्लेखनीय था कि जब उनकी मृत्यु हई, तो उनका अन्तिम संस्कार दोनों आन्दोलनों, अर्थात भक्ति व सूफी के रिवाजों के अनुसार किया गया आर उनकी समाधि पर दो भिन्न धर्मों की इमारतें कायम हई। कबीर का जीवन भी अमरत्व, भक्ति तथा ईश्वर के प्रति समर्पण भाव के चलते व्यक्ति के सच्चे प्रेम तथा दुखों के प्रति समर्पित था। हमने यह भी देखा कि विरह तथा अग्नि की भक्ति परंपरा की धारणाओं तथा इश्क, दर्द तथा आतिश के सूफी विचारों के बीच किस तरह से प्रमुख समानताएँ मौजूद थीं। हालाँकि कबीर व नानक, दोनों की रचनाएं रहस्यवादी थीं, किन्तु वे जाति-प्रथा द्वारा पैदा की गई असमानताओं तथा आमतौर पर हिन्दू रूढ़िवादिता के प्रति चिन्तित थे, तथा उन्होंने इसके खिलाफ आवाज उठाई।

बोध प्रश्न 2

i) सूफीवाद की मुख्य शिक्षाएँ क्या हैं?

.....

.....

.....

.....

.....

ii) भक्ति तथा सूफी परंपराओं के बीच की कुछ ऐसी समानताओं का उल्लेख कीजिए, जो कि इस बात को उजागर करें कि दोनों के बीच अन्योन्यक्रिया हुई थी।

.....

.....

.....

.....

.....

10.5 सारांश

इस इकाई में हमने भक्ति तथा सूफीवाद पर चर्चा की। शुरू में हमने भक्ति परंपरा की जाँच दक्षिण में (जहाँ से यह शुरू हुई) तथा बाद में उत्तर में (जहाँ इसका प्रसार हुआ) की। फिर हमने सूफी परंपरा पर ध्यान केन्द्रित किया और बताया कि सूफीवाद क्या है और भारत में इसके प्रसार की व्याख्या की। अंत में हमने मध्यकालीन रहस्यवाद के विकास, सूफी-भक्ति अन्यान्यक्रिया तथा भक्ति-सूफी शिक्षाओं को शामिल करते हुए सूफीवाद तथा भक्ति के बीच तुलना की।

10.6 संदर्भ

दीवान आर, 1993; *दि रिलीजन ऑफ लव,* इन द संडे टाइम ऑफ इंडिया, 21 नवम्बर, 1993

एलिएड मिर्सिया; 1987; *द एन्साइक्लोपीडिया ऑफ रिलीजन;* खण्ड-2; मैकमिलन पब्लिशिंग कम्पनी; न्यूयार्क; 130-33

इन्दिरा गाँधी राष्ट्रीय मुक्त विश्वविद्यालय पाठ्यसामग्री (2005) *समाज और धर्म* (ESO 15), नई दिल्ली, इग्नू।

फारूकी, आजाद, आई.एच.; 1984; *सूफीवाद एवं भक्ति;* अभिनव पब्लिकेषन्स।

मुजीब, एम.; 1967; द इण्डियन मुस्लिम्स; जॉर्ज ऐलन एंड अनविन लि.: लंदन; पष्ः 113-167 तथा 283-315

रामानुजम, ए.के.; 1973; *स्पीकिंग ऑफ शिवा,* पैंगविन बुक्सः मिडिलसैक्स पष्ः 19-55

जेन्हर आर.सी; 1962; *हिन्दू धर्म,* आक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस, लंदन अध्याय 6

10.7 बोध प्रश्नों के उत्तर

बोध प्रश्न 1

i) भक्ति किसी खास दैवीय शक्ति के प्रति समर्पण अथवा पूजा के उस कृत्य से संबंधित है जिसमें स्वयं अपने तथा किसी अन्य देवता के बारे में कोई विचार मन में नहीं लाया जाता । यह माना जाता है कि व्यक्ति को चुने गये देवता की पूजा में पूरी तरह खो जाना चाहिये। भारत में यह मध्यकाल के दौरान एक आन्दोलन के रूप में विकसित हई। भगवान कृष्ण तथा शिव मुख्यतः ऐसे देवता थे जिनके इर्द-गिर्द भक्ति परंपरा का उदय हुआ। सूफी आन्दोलन ने हिन्दूधर्म की रूढ़िवाद प्रकृति का एक विकल्प प्रस्तुत किया। इसने खासतौर पर ईश्वर की नजर में सभी लोगों बराबरी के विचार पर ज़ोर दिया तथा जाति-प्रथा के पक्षपाती रवैये को स्वीकार किया।

ii) तीन प्रकार की भक्ति की व्याख्या इस प्रकार हैंः

i) विरहः विरह शब्द के मायने हैं अलग हो जाना। विरह भक्ति का प्रमुख पहलू है। इसलिये, देवता की अनुपस्थिति अथवा ईश्वर के कहीं दूर चले जाने पर पैदा होने वाली कसक तथा उससे उमड़ पड़ने वाला समर्पण भाव रखते हुए भक्त द्वारा ईश्वर के प्रति समर्पित हो जाना है। इसे विरह भक्ति इसलिये कहा जाता है क्योंकि यह उस गहन समपर्ण की एक खास अवस्था है जो कि किसी की अनुपस्थिति में पैदा हो जाता है।

ii) सगुणः यह ऐसी भक्ति है जिसमें अनुशासित' अमल के जरिये भक्त ईश्वर की आराधना भक्त से अलग तथा ऊँची हस्ती के तौर पर करता है। यहां ऐसी किसी निजी दैवीय शक्ति अथवा इष्टदेव की पूजा के जरिये ही संभव है। यह स्वरूप अक्सर दक्षिण भारत में देखा जा सकता है।

iii) निर्गुणः यह ऐसी भक्ति है जिसका उद्देश्य उस दैवीय शक्ति के साथ एकाकार हो जाना है जिसकी व्यक्ति आराधना कर रहा है। पुनः यह भी वर्षों तक भक्ति एवं समर्पण के जरिये ही संभव है। यह माना जाता है कि दैवीय शक्ति इस समर्पण भाव से इतनी प्रसन्न हो जाती हैं वह भक्त का अपने शरीर में विलय कर लेती है। उदाहरण के लिये, कथाओं में जैसा कि बताया गया है कि मीराबाई का कृष्ण विलय। भक्ति का यह रूप अधिकतर उत्तर भारत में मिलता है।

बोध प्रश्न 2

i) सूफीवाद एक रहस्यवादी आन्दोलन है। सूफी रहस्यवादी शिक्षक हैं तथा सदियों से शिष्यों को रखते आये हैं। सूफी कुरान का अनुसरण करते हैं तथा एक निस्वार्थ एवं सांसारिक चीजों का त्याग करने वाली जिन्दगी में विश्वास रखते हैं। वे धैर्य, विनम्रता तथा परोपकार के रुख में भी विश्वास करते हैं। उनकी बुनियादी शिक्षाओं में ईश्वर अथवा अल्लाह के अस्तित्व पर ध्यान केन्द्रित करके उसके नाम का जाप करने के माध्यम से उसकी आराधना करना शामिल है। इसे धिक्र कहा जाता है। यह धार्मिक भावनाएँ पैदा करने के लिये संगीत तथा गीतों को सुनने को प्रोत्साहित करता है।

ii) यदि हम भक्ति व सूफी परंपराओं पर बारीकी से गौर करें, तो हमें उनके बीच बहुत सारी समानताएँ देखने को मिलती है। दोनों परंपराओं में एक ही दैवीय शक्ति की उपासना पर ध्यान देने पर बल दिया गया है। सूफीवाद में इसे धिक्र तथा इश्क कहा जाता है और भक्ति में यह इष्ट-देवता संबंधी भावना है। इसी तरह भक्ति में विरह की धारणा की तुलना सूफियों के दर्द की धारणा से की जा सकती है। जिस तरह विरह से अग्नि (आत्मा में आग) पैदा होती है, ठीक उसी तरह दर्द से आतिश पैदा होती है। जैसा कि हम देखते हैं दोनों ही परंपराएँ भक्त तथा दैवीय प्रेम की बात करती हैं तथा दोनों ही मामलों में दैवीय शक्ति से, यह प्रेम, उस प्रेम से मिलता-जुलता है जो कि कोई व्यक्ति अपने प्रेमी से करता है तथा दोनों ही परंपराओं में दैवीय शक्ति से भक्त के रिश्तों के संदर्भ में दर्द तथा दुख की प्रकृति भी पाई जाती है। इस तरह, हम यह कह सकते हैं कि ये समानताएँ इस बात का इशारा करती हैं कि दोनों परंपराओं के बीच परस्पर अन्योन्यक्रिया हुई थी।

इकाई 11 धार्मिक सुधार आन्दोलन*

इकाई की रूपरेखा

11.0 उद्देश्य

11.1 प्रस्तावना

11.2 सुधार की आवश्यकता

11.3 आर्य समाज की स्थापना

- 11.3.1 आर्य समाज का संगठन
- 11.3.2 आर्य समाज के नियम
- 11.3.3 आर्य समाज के सदस्य
- 11.3.4 वेदभाश्य का प्रकाशन

11.4 आर्य समाज आन्दोलन एवं समाज सुधार

- 11.4.1 हिन्दू धर्म को तीन चुनौतियाँ
- 11.4.2 आर्य समाज एवं महिलाओं का उद्धार
- 11.4.3 राजनीति और आर्य समाज

11.5 सारांश

11.6 संदर्भ

11.7 बोध प्रश्नों के उत्तर

11.0 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के बाद, आपः

- सामाजिक एवं आर्थिक व्यवस्थाओं, जिनमें सुधार की आवश्यकता थी, को जान सकेंगे;
- आर्य समाज की संस्थापना, संगठन एवं उसके नियमों को धार्मिक सुधार आन्दोलन के उदाहरण स्वरूप समझ सकेंगे;
- आर्य समाज की शिक्षाएं;
- आर्य समाज के योगदान को समझ सकेंगे; और
- आर्य समाज का आन्दोलन तथा आधुनिक भारत के बारे में जानकारी प्राप्त कर सकेंगे।

1.1 प्रस्तावना

इस इकाई में हमने भारतीय समाज में सुधार किये जाने की उस जरूरत को रेखांकित किया है जिसे आर्य समाज ने पहचाना था और जिसके लिए उसने काम किया था। हम आर्य समाज की स्थापना के नियम, तथा सबसे पहले आर्य समाज की सदस्यता ग्रहण करने वाले लोगों पर विचार करते हुए शुरुआत करते हैं। उसके बाद हम सुधारों के संदर्भ में आर्य समाज के आन्दोलन पर चर्चा करेंगे। यह हिन्दू धर्म को दी गई चुनौतियों, महिलाओं के उस्थान तथा राजनीति में आर्य समाज की भूमिका के संदर्भ में है।

*इग्नू पाठ्यसामग्री से अंगीकृत : *समाज और धर्म* (ESO-15) की इकाई 26 राघवेन्द्र प्रसाद द्वारा रचित का नीता माथुर द्वारा संशोधन।

11.2 सुधार की आवश्यकता (Need For Reform)

आर्य समाज के संस्थापक स्वामी दयानन्द का जन्म सन् 1824 में हुआ था, उस समय भारत में अंग्रेजों का शासन था। दयानन्द ब्राह्मण माता-पिता की संतान थे। उनकी शिक्षा पांच वर्ष की उम्र में शुरू हुई और आठ वर्ष की अवस्था में उनका यज्ञोपवीत संस्कार कराया गया। दयानन्द का धार्मिक तौर पर रूपान्तरण उस समय हुआ जबकि चौदह वर्ष की आयु में उनसे शिवरात्रि का व्रत रखने के लिए कहा गया। दयानन्द व उनके पिता इसके लिए एक मंदिर में गये और मध्य रात्रि तक प्रार्थना व मंत्रों का जाप होता रहा। दयानन्द ने जब एक चूहे को शिव की मूर्ति पर छलांग लगाते और प्रसाद खाते हुए देखा तो उस घटना ने उनकी धार्मिक खोज की पृष्ठभूमि तैयार कर दी। उन्होंने महसूस किया कि मूर्ति स्वयं में ईश्वर नहीं हो सकती। यह ऐसा युग था, जब यातायात एवं संचार के माध्यम अपेक्षाकृत रूप में आदिकालीन थे। छापेखाने या अच्छे समाचार पत्र बहुत कम संख्या में थे। ब्रिटिश सरकार को प्रारंभ में इस बात का भय था, कि छापेखानों एवं आधुनिक शिक्षा से राजद्रोह की स्थिति उत्पन्न हो जाएगी।

उस काल में अंग्रेजों ने, अंग्रेजी शासन व्यवस्था को चलाने के लिए आर्थिक रूप से सस्ते, अंग्रेजी शिक्षा प्राप्त लिपिकों को बड़े पैमाने पर उत्पन्न करने की नीति को अपनाया हुआ था। इस नीति का मूल उद्देश्य, अंग्रेजी शिक्षा प्राप्त व्यक्तियों को सांस्कृतिक एवं मानवीय रूप से पतन का शिकार बनाना था।

अंग्रेजी शासन के द्वारा पैदा की गई समस्याएं तथा भारत औपनिवेशिक उत्पीड़न से उत्पन्न अनेक प्रकार की बुराइयां, उस समय की महत्वपूर्ण समस्याएं थीं। भारतीयों का बहुसंख्या में ईसाई मत में परिवर्तित होना, छुआछूत की कुरीतियां, जिससे शूद्रों का जीवन अमानवीय स्तर का हो गया था। महिलाओं का समाज में निम्न स्तर, पर्दा-प्रथा, बाल-विवाह, निरक्षरता तथा सबसे आर्थिक दुर्भाग्यपूर्ण सती-प्रथा प्रमुख समस्याएं थी। इन समस्याओं ने स्वामी दयानन्द को विकल एवं बेचैन कर दिया था। इसके अतिरिक्त भारत को औद्योगीकरण किये गये इंग्लैंड के एक कृषि उपनिवेश में परिवर्तित करने की नीति के फलस्वरूप उत्पन्न बड़ी संख्या में बढ़ती हुई गरीबी एक समस्या थी।

बॉक्स 11.1 स्वामी दयानंद सरस्वती के जीवन की झलक

दयानन्द ने वैदिक शिक्षा प्राप्त की थी और उनके पिता, उनके शिक्षकों में से एक थे। उनकी शिक्षा यजुर्वेद से आरंभ हुई। (जो कि चार वेदों में से एक है) तथा व्याकरण के नियमों तथा उनके प्रयोग को सीखते हुए संस्कृत में ही आगे शिक्षा जारी रही। तर्कशास्त्र, दर्शन, विधि तथा आचार-शास्त्र आदि की शिक्षा भी दी गई। किन्तु दयानन्द महज एक विद्यार्थी ही नहीं बल्कि उससे कुछ अधिक थे। वे ज्ञान प्राप्त करने को उत्सुक थे। उन्होंने जीवन और मृत्यु की समस्या पर चिंतन किया।

अपनी चिंतनशीलता से मुक्ति पाने में उनकी मदद करने के लिए उनका दूसरी बार विवाह निश्चित किया गया, किन्तु अपने विवाह की तिथि से एक सप्ताह पहले 21 वर्ष की आयु में वे घर से भाग निकले। वे साधु बन गये और इस बात का उन्हें कभी भी पछतावा नहीं हुआ। 15 वर्ष तक (1845 से 1860 ई. तक) दयानन्द ने समूचे भारत का भ्रमण किया और अनेक दूसरे साधुओं व पंडितों से भेंट करके ज्ञान की अपनी खोज जारी रखी। दयानन्द की शिक्षा तब पूरी हुई जब कि उनकी मुलाकात स्वामी विरजानन्द सरस्वती से हुई। स्वामी विरजान्द ने हिन्दू धर्म में व्याप्त तमाम कुरीतियों को दूर करने का दायित्व स्वामी दयानन्द को सौंपा। उन्होंने दयानन्द से कहा कि उन्हें

दुनिया में एक मुक्त शिक्षक के रूप में प्रवेश करना चाहिएं। उन्होंने दयानन्द को इस बात की शपथ दिलाई कि वह अपना जीवन सत्य का प्रचार-प्रसार करने हेतु समर्पित करेंगे। इसके बाद से दयानन्द ने अपना सारा जीवन अपने गुरू को दिये गये वचन को निभाते हए बिताया।

ब्रिटिश शासकों का इरादा यह था कि भारत केवल ब्रिटिश कारखानों के लिए कच्चा माल पैदा करेगा और मशीन से बने उनके माल के लिए एक बंधुआ बाजार के तौर पर काम करेगा। यह सब भारत के पिछड़ेपन, अंधविश्वासों, अनेक पंथों और उपमतों की मौजूदगी के कारण, जो कि एक दूसरे पर कीचड़ उछाल रहे थे, संभव हो सका। और अंततः ब्राह्मण पुरोहितों का वर्चस्व था, जिन्होंने भक्ति जैसे अन्य आन्दोलनों को अपने विरोध द्वारा शुरू में मुश्किलों में डाल दिया था, समस्याओं का यह पहाड़ दयानन्द को हमेशा अखरने लगा और उन्होंने महसूस किया कि उन्हें इसके लिए कुछ करना चाहिए।

आर्य समाज की उत्पत्ति के बारे में उचित जानकारी प्राप्त करने के लिए हमें मानसिक रूप से उस काल में जाना आवश्यक है जब उपनिवेशवाद अपनी चरम सीमा पर था।

भारत पर विदेशियों का शासन एक हजार वर्षों से भी अधिक काल तक रहा है, इतने लंबे काल की गुलामी ने भारत की आत्मा को कुचल के रख दिया था। दक्षिण में मराठों, पेशवाओं और राजपूतों की उन्नति के कुछ उज्ज्वल उपवादों एवं चाल्लुकों, चोलों और पंजाब में महाराजा रणजीत सिंह के उत्थान को छोड़ कर सम्पूर्ण सहस्त्र वर्षीय काल पतन एवं रक्त सोखने वाली गतिविधियों से भरा हुआ था। विदेशी शासन ने भारतीयों को बुरी तरह आश्रित बना डाला था। कर्मकांडों व रीतिरिवाजों समेत सभी मामलों में ब्राह्मण पुरोहितों को सर्वशक्तिमान निर्णायक माना जाता था। कोई भी गृहस्थ ब्राह्मण पुरोहित की सलाह के बिना कोई कार्य नहीं कर सकता था। यह पुरोहित प्रायः ज्यादा शिक्षित नहीं होता था, परन्तु अपना ''पत्रा' एवं ''पंचाग" साथ लिए फिरता था एवं कोई भी व्यक्ति उसकी पुस्तक या उसके स्वयं के अधिकार को चुनौती नहीं दे सकता था। जन्म से लेकर मृत्यु तक जितने संस्कार होते थे, उनमें इस पुरोहित की बात को सर्वमान्य माना जाता था। इस पुरोहित को अच्छे व्यंजन एवं अच्छा पारितोषिक देकर प्रसन्न रखा जाता था। हालांकि यह रेखांकित किया जाना चाहिए कि सभी भारतीय ब्राह्मणों के अंधे शासन के अधीन नहीं थे, और इस काल में भक्ति, सूफीवाद तथा वीरशैववाद जैसे आन्दोलन उभरे और फले-फूले।

हिन्दू रूढ़िवादियों में छुआछ्त का शासन था। वे अपने लाखों शूद्र भाइयों को नहीं छूते थे। यदि वे ऐसा करते थे तो उन्हें सफाई करने के लिए स्नान करना पड़ता था। उनके साथ भोजन करने का तो प्रश्न ही नहीं उठता था। हिन्दू अनेक मतों एवं उपमतों में विभाजित थे और उन सबके अपने-अपने पुरोहित एवं मुख्य धर्म ग्रंथ अलग हुआ करते थे। प्रश्न करने या पूछताछ करने का नियम नहीं था, उनके धर्म ग्रंथों में जो कुछ लिखा होता था एवं उसका जो भी अनुवाद उनका पुरोहित करता था, वही उनका धर्म बन जाता था। ये आलेख अति पवित्र माने जाते थे, हालांकि कोई भी चालाक पंडित मूल लेखक या ऋषि के नाम से स्वयं अपने अथवा अपने गुट के निहित स्वार्थी या विशेषाधिकारों को बढ़ावा देने के लिए अपने द्वारा उत्पन्न किये मतों को इन आलेखों में सम्मिलित कर सकता था। इस प्रकार के प्रक्षेप यद्यपि कम होते थे, परन्तु उन्होंने मूल पाठ के अर्थ का अनर्थ करके भारी भ्रम पैदा कर दिये और इन पाठ्यों की व्याख्या को गुमराह कर दिया। स्वामी दयानन्द ने समस्त हिन्दुओं को वेदों के अन्तर्गत एक करने की चेष्टा की। उन्होंने सोचा कि वेदों में प्रक्षेप करना असंभव था।

बॉक्स 11.2 स्वामी दयानन्द का दृष्टिकोण

स्वामी दयानन्द ने हिन्दूवाद के बारे में अपने दृष्टिकोण से प्रवचन देना शुरू किया। ने अनेक विद्वान पंडितों के साथ, अनेक वाद-विवाद किये। संपूर्ण उत्तर भारत में काफी दूर-दूर तक भ्रमण किया। सन् 1872 में ब्रह्म समाज के नेताओं के साथ हुई एक गोष्ठी के फलस्वरूप अपने प्रवचन संस्कृत भाषा के बजाय हिन्दी भाषा में देना शुरू कर दिया, जिससे उनको हिन्दू समुदाय के मध्य वर्गीय व्यक्तियों से अधिक अच्छी प्रतिक्रिया प्राप्त हुई। हिन्दी बोलने वाले, मध्य वर्गीय व्यक्तियों की सहायता से उन्होंने स्कूलों एवं मासिक पत्रिकाओं की स्थापना की। बहुत संख्या में पुस्तकों एवं पर्चों को छपवाया गया।

11.3 आर्य समाज की स्थापना (Foundation of Arya Samaj)

1875 में अपने बम्बई के दौरे के समय स्वामी दयानन्द ने सबसे महत्वपूर्ण एवं दूरगामी निर्णय लिया। यह निर्णय ''आर्य समाज'' की स्थापना के बारे में था। इस संगठन का उद्देश्य, उनके प्रवचनों का प्रचार करके उसकी जड़े जमाना एवं उत्तरी भारत में दृढ़तापूर्वक सुधार लाना था। इससे हिन्दू धर्म तथा भारतीय राष्ट्रवाद के विकास पर बहुत बड़ा प्रभाव पड़ा। स्वामी दयानन्द के मस्तिष्क में एक संगठन का विचार काफी समय से था। उन्होंने पहले कई बार एक संस्था के गठन करने का प्रयास सन् 1874 में बनारस में किया था परन्तु दोनों प्रयास प्रायः असफल रहे थे। 16 जनवरी, 1875 में, उसने राजकोट में, आर्य समाज को स्थापित किया, परन्तु यह विकसित नहीं हो पाया। सन् 1875 में ही दोबारा उन्होंने अहमदाबाद में आर्य समाज को स्थापित किया, परन्तु यह प्रयास भी असफल रहा। फिर 10 अप्रैल, 1875 में उन्होंने बम्बई में आर्य समाज को स्थापित किया। यह प्रयास बहुत ही सफल रहा। बम्बई में अनेक घटकों के योगदान के फलस्वरूप उनके प्रयासों के लिए उचित वातावरण की प्राप्ति हई। इसका एक कारण यह भी था कि पहले की अपेक्षा इस बार स्वामी दयानन्द ने इस संगठन के लिए ज्यादा अच्छी तरह से तैयारी की थी। सुधार के बारे में उनके विचार पूर्ण रूप से परिपक्व हो गये थे। उसके द्वारा लिखी गई पुस्तक "सत्यार्थ प्रकाश'' भी मौजूद थी, जिसमें उन्होंने शिक्षा के अपने दर्शन से शुरुआत की थी। उन्होंने इस बात पर ज़ोर दिया कि माता-पिता का यह कर्तव्य है कि वे अपने बच्चों को शिक्षित एवं सच्चरित्र बनाएं। उन्होंने प्रस्ताव किया कि 5 वर्ष की आयु से ही बच्चों को संस्कृत, हिन्दी तथा साथ ही विदेशी भाषाएं सीखना शुरू कर देना चाहिए। इस तरह उन्होंने त्रिभाषा-फार्मूला प्रस्तुत किया। वे यह भी मानते थे, कि माता-पिता अपने बच्चों को अनुशासित रखें और विधिवत रूप से सामाजिक प्राणी बनाएं। दयानन्द लड़कियों व लड़कों दोनों के लिए 8 वर्ष की आयु से गंभीर रूप से शिक्षा दिये जाने के पक्ष में थे, किन्तु वे उनके सह-शिक्षा संस्थानों के पक्षधर नहीं थे। सभी विद्यार्थियों से आशा की जाती थी कि वे ब्रह्मचर्य का पालन करें। दयानन्द हालांकि, शिक्षा के माध्यम से पुरुष व स्त्री की समानता के पक्षधर थे। उन्होंने बाल-विवाह का दृढ़ता के साथ विरोध किया और कहा कि लड़कियों का विवाह 16 वर्ष तथा लड़कों का विवाह 25 वर्ष की आयु से पहले नहीं किया जाना चाहिए।

स्वामी दयानन्द ने, जो सबसे महत्वपूर्ण एवं गैर परंपरागत कदम उठाये थे, उनमें से एक वह प्रस्ताव था कि जिन हिन्दुओं ने ईसाई एवं इस्लाम धर्म इत्यादि को स्वीकार कर लिया था उन्हें वापस हिन्दू धर्म में सम्मिलित किया जाए। इसको प्रायः शुद्धि संस्कार द्वारा बहुसंख्या में एक साथ किया गया।

आर्य समाज के संस्थापक से अनेक महत्वपूर्ण प्रश्न उभर के आते हैं। समाज में आर्य समाज की भूमिका का विचार स्वामी दयानन्द के मस्तिष्क में किस प्रकार आया एवं उसने आर्य समाज में स्वयं अपनी भूमिका को किस रूप में देखा था? इस संगठन में सम्मिलित होने के इच्छुक व्यक्ति कौन थे एवं किन कारणोंवश वे ऐसा करने को प्रेरित हुए थे? किस प्रकार की संस्था बन के तैयार हुई एवं इसके अनुरूप संस्थाएं कौन-कौन सी थी? अब हम इन प्रश्नों पर विचार करेंगे।

इस बात का ध्यान रखना चाहिए कि स्वामी दयानन्द ऐसे समस्त हिन्दुओं को एक सूत्र में बांधना चाहते थे। जो कुछ आम मुद्दों के बारे में एक मत थेः i) धार्मिक एवं सामाजिक सुधारों के प्रति निष्ठा; ii) वैदिक धर्म के पुनः प्रचलन के माध्यम से हिन्दू धर्म में सफलता प्राप्त करने का दृढ़ संकल्प। एक समाज के रूप में संगठित किये जाने से, ये व्यक्ति सारे समाज पर प्रभाव डालने में एक-दूसरे की सहायता करने में अधिक प्रयत्नशील एवं प्रभावकारी होंगे। अपने विचारों का प्रचलन या प्रचार करने के लिए स्वामी दयानन्द अपने अनुयायियों की संस्था बनाने के इच्छुक नहीं थे। उनकी मान्यता थी कि सुधार जनसाधारण द्वारा स्वयं किये जाने चाहिए। अपने व्यक्तिगत जीवन में सुधार लाना एवं अपने समाज को ऊपर उठाने का दायित्व स्वयं व्यक्तियों को होता है। व्यक्तिगत रूप से या अपने प्रकाशनों के माध्यम से स्वामी दयानन्द व्यक्तियों को सदैव सलाह प्रदान करता रहेगा। परन्तु वह उनका नेता नहीं बनेगा। उसको अपने स्वयं के ज्ञान की सीमाओं का आभास था एवं उन्होंने अपने अनुयायियों के किसी वर्ग या किसी भी एक व्यक्ति का गुरू बनना अस्वीकार कर दिया था।

स्वामी दयानन्द के अनेक व्याख्यानों के आधार पर यह कहा जा सकता है कि शुरू से ही उन्होंने यह धारणा बना ली थी कि आर्य समाज में वह प्रमुख के बजाय किसी भी अन्य रूप में अपनी भूमिका निभाएंगे। उनका यह विचार नहीं था कि आर्य समाज कुछ खास व्यक्तियों का अंतरंग स्वर्ग बन जाए, बल्कि वह चाहते थे कि यह एक ऐसा विस्तृत एवं खुला हुआ संगठन बने जिसमें वेदों में धार्मिक आस्था रखने वाले समस्त हिन्दू एक हो जाएं। कुछ वर्षों के पश्चात जब समाज विकसित होकर, अधिक प्रबल हो गया तो आर्य समाज के प्रति स्वामी दयानन्द के इन मूल विचारों में धीरे-धीरे और अधिक दृढ़ता आ गई।

समाज की स्थापना के लिए जो गोष्ठियां एवं चर्चाएं हुई थी उनमें स्वामी दयानन्द ने अपना अधिक समय नहीं दिया क्योंकि यह समय अधिकांश रूप से उसके सामान्य कार्यों में व्यतीत होता था। अपने प्रवचनों एवं प्रचार के लिए जन संबोधन को उन्होंने मुख्य साधन के रूप में उपयोग किया था। अपने जन संबोधनों में वह प्रमुख रूप से सकारात्मक मुद्दों पर अधिक ज़ोर देते थे। आर्यों का इतिहास वेदों के बारे में ईश्वरीय ज्ञान, परमात्मा एवं आत्मा का संबंध, आचार शास्त्र एवं राष्ट्र का उत्थान। अपने भाषण में किसी प्रकार के अवरोध एवं उसके पश्चात् अधिक प्रश्नोत्तरों के किसी भी सत्र का वह सदैव विरोध करते थे।

11.3.1 आर्य समाज का संगठन (Organisation of Arya Samaj)

आर्य समाज का एक प्रभावशाली सांगठनिक ढांचा था। आर्य समाज की प्रत्येक शाखा अपने आप में एक इकाई है और ये गांवों, कस्बों व शहरों में स्थित हैं।

i) सदस्यता के तहत 10 सिद्धांतों अथवा नियमों को स्वीकार करना शामिल है। (इनकी व्याख्या के लिए अनुभाग 11.3.2 देखें). साथ ही उद्देश्य के लिए मासिक अथवा वार्षिक आमदनी का एक प्रतिशत हिस्सा संगठन को देने तथा आम सहयोग व बैठकों में भागीदारी आदि भी शामिल हैं। इस तरह की साप्ताहिक बैठकों में हवन, भजन तथा

प्रार्थनाएं आदि की जाती हैं। कोई साधारण व्यक्ति, चाहे उसकी जाति कुछ भी क्यों न हो, इन बैठकों का संचालन करता है।

ii) आर्य समाज के मसलों का संचालन कार्यकारिणी समिति करती है। पांच पदाधिकारी होते थे तथा उनके अतिरिक्त अन्य सदस्य होते थे, सभी का चुनाव सदस्यों द्वारा ही किया जाता था। पदाधिकारी हैं : क) अध्यक्षय ख) उपाध्यक्षय ग) सचिवय घ) लेखाकारय ङ) पुस्तकालयाध्यक्ष। इन सदस्यों से समाज की गतिविधियों में बढ़ चढ़ कर भाग लेने की आशा की जाती है। जैसा कि कहा जा चुका है कि इन सदस्यों का चुनाव वार्षिक मतदान द्वारा होता है और पुनः निर्वाचन स्वीकार्य है।

iii) इसके बाद एक प्रान्तीय समा है जहां समाज के प्रतिनिधि एक अहम भूमिका निभाते हैं। प्रत्येक आर्य समाज को अपनी कुल आमदनी का दस प्रतिशत हिस्सा सभा को देना होता है। सभा स्वयं भी धनराशि इकट्ठा कर सकती है।

iv) सर्वोच्च निकाय है, अखिल भारतीय सभा, यह सभी प्रान्तों के प्रतिनिधियों से मिलकर बनती है और इन्हें आप में जोड़ती है।

v) युवाओं के आर्य समाज भी हैं जो कि ऐसे सदस्यों को भर्ती करने के मामले में उदार रहते हैं जो ईश्वर में आस्था रखते हैं तथा सदस्यता के लिए मामूली मासिक शुल्क अदा करते हैं।

vi) यह इंगित किया जाना चाहिए कि समाज के अपने सभा स्थल होते हैं, वह उन्हें कहीं भी आयोजित कर सकता है, चाहे वे स्वयं उनके भवन हों अथवा अन्य कोई स्थान हो, जोकि उपयुक्त हों और उपलब्ध हो सकें।

11.3.2 आर्य समाज के नियम (Rules of the Arya Samaj)

बम्बई की आर्य समाज की शाखा ने 28 नियम बनाकर शुरुआत की थी, जो धार्मिक, सामाजिक एवं संगठन संबंधी व्यवस्थाओं से संबद्ध थे। इनमें से कुछ नियम इस प्रकार के थे : जनसाधारण के हित के लिए आर्य समाज आवश्यक है। प्रत्येक प्रान्त में एक मुख्य समाज होगा एवं यथासंभव स्थानों पर उसकी शाखाएं स्थापित की जाएंगी। सप्ताह में एक बार समाज की गोष्ठी का आयोजन किया जाएगा, जिसमें सामवेद के मंत्रों का उच्चारण होगा। ईश्वर की महिमा का बखान करने के लिए भाषण एवं गीतों का आयोजन किया जा सकता है, जिसमें वाद्य संगीत सम्मिलित किया जाएगा। समाज में हिन्दी एवं संस्कृत भाषा की पुस्तकों का एक पुस्तकालय होगा, आमदनी एवं खर्चे का हिसाब रखा जाएगा। (सदस्यों द्वारा अपनी आमदनी का 9 प्रतिशत भाग शुल्क के रूप में दिया जाएगा) एक समाचारपत्र का प्रकाशन किया जाएगा, लड़कों एवं लड़कियों के लिए अलग-अलग स्कूल चलाए जाएंगे (लड़कियों के स्कूल में केवल महिला कर्मचारियों की नियुक्ति की जाएगी) सत्यता का प्रवचन करने हेतु विद्वान व्यक्तियों को अन्य स्थानों पर भेजा जाएगा। सदस्यों को अपने सदस्यों के साथ सदभाव से स्नेह प्रदान करना चाहिए।

विवाह एवं मृत्यु के सारे समारोह वेदों के अनुसार आयोजित किये जाएंगे। किसी बेईमान एवं दुष्ट व्यक्ति को समाज से निष्कासित किया जा सकता है, परन्तु किसी व्यक्ति को पूर्वाग्रह या पक्षपात पूर्ण ढंग से समाज से निष्कासित नहीं किया जा सकता है। समाज में अध्यक्ष एवं सचिव के अलावा एक अधिकारी भी होगा। उत्कृष्ट कार्य के लिए व्यक्ति को पुरस्कृत किया जाएगा एवं उसके कार्यों की सराहना की जाएगी। समाज देश के सुधार के लिए कार्य करेगा-आध्यात्मिक एवं भौतिक दोनों रूपों में । आर्य समाज की किसी संस्था में किसी भी पद के लिए आर्य समाजी को वरीयता प्रदान की जाएगी। विवाह के समय जो

भी दान किया जाएगा वह आर्य समाज को दिया जाना चाहिए। मुख्य धार्मिक नियम यह था कि वेद सर्वोच्च है एवं उनकी महत्ता सर्व उजागर है, ऋषियों द्वारा लिखी गई अन्य पुस्तकों की महत्ता वेदों के समक्ष दूसरे दर्जे की है। निराकार ब्रह्म की वंदना की जानी चाहिए।

आर्य समाज के 28 नियम काफी संपूर्ण एवं विस्तत है। इसके अलावा ये याद रखने के लिए काफी सख्या में थे। इसलिए लाहौर में इनकी संख्या घटा कर 10 कर दी गई थी। आर्य समाज के इतिहास में 24 जून 1877 एक चिरस्मरणीय दिवस था, क्योंकि इस दिन लाहौर में आर्य समाज को स्थापित किया गया था।

यह बम्बई के आर्य समाज से संबद्ध नहीं था। लाहौर का समाज, आर्य समाज के इतिहास का एक नया अध्याय था, इसने पुराने समाज का प्रायः नवीनीकरण कर दिया था। जैसे बम्बई में स्वीकृत किये गए 28 नियमों में ध्यानपूर्वक संशोधन किया गया था, उनको दोबारा लिखित रूप दिया गया था और उनकी संख्या घटा कर 10 नियम कर दी गई थी। ऐसा प्रतीत होता था, जैसे आर्य समाज का नया विधान बनाया गया हो। लाहौर में समाज के संस्थापक सदस्यों की संख्या 100 थी। जुलाई के अन्त तक यह संख्या बढ़ कर 500 हो गई थी।

24 जुलाई, 1877 को इन दस नियमों को अंगीकृत कर लिया गया। इनको आर्य समाज के मूलभूत सिद्धांतों के रूप में माना जाता है एवं समस्त आर्य समाजियों के लिए इनका पालन करना अनिवार्य माना जाता है। पहले दो नियम ईश्वर से संबंधित हैं एवं तीसरा नियम वेदों से संबंधित हैं। ईश्वर एवं वेद आर्य समाज के आधार हैं। शेष नियम सामान्य व्यक्ति के आचार-विचार के लिए मार्गदर्शक के रूप में हैं। ये दस नियम निम्नलिखित हैंः

i) सच्चे ज्ञान एवं ज्ञान द्वारा जानी जाने वाली समस्त वस्तुओं का मुख्य स्रोत परमात्मा होता है।

ii) परमेश्वर ही परम सत्य है, परम ज्ञान है एवं परमानन्द है। वह निराकार है, सर्वशक्तिमान है, यथार्थ है, दयाल है, अजन्मा है, अनंत है, अपरिवर्तनीय है, अनादि है, अद्वितीय है, सबका सहायक एवं स्वामी है, सर्वव्यापी है, सबकी अन्तरात्मा में निवास करता है एवं उसका नियंत्रण करता है, प्रत्यक्ष है, चिरस्मरणीय एवं निःषक है, अनन्त है, अन्यात्मा है एवं सारे विश्व का सृष्टिकर्ता है। केवल वही पूजने योग्य है।

iii) वेद समस्त ज्ञान के भंडार की पुस्तकें हैं। समस्त आर्य समाजियों के लिए वेदों का अध्ययन एवं प्रचार करना, वेदों को सुनना एवं उनका प्रवचन देना. उनका प्रमुख कर्तव्य है। स्वामी दयानन्द के सिद्धान्तवाद में, परमेश्वर के पश्चात वेदों का सबसे महत्वपूर्ण स्थान है। वेदों का पुनः अध्ययन' के नारे से उसका आशय यह है कि हमको धर्म ग्रंथों में लिखी हुई उन सब बातों को अमान्य करना चाहिए जो वेदों के उपदेशों से भिन्न हैं, वेद परमेश्वर द्वारा उच्चरित शब्द/वाक्य हैं जिन्हें ऋषियों द्वारा समस्त मनुष्य जाति को प्रवचन कराया गया है। इस प्रकार वेदों की रचना किसी मानव द्वारा नहीं की गई।

iv) सच्चाई को हमें सदैव स्वीकार करना चाहिए एवं असत्य को सदैव ठुकराना चाहिए। यह एक महत्वपूर्ण अभियुक्ति है। समय के अनुसार हमको किसी विचारधारा को मान्यता प्रदान नहीं कर देनी चाहिए। यदि वह असत्य है तो उसका बहिष्कार करने में हमें किसी प्रकार का संकोच नहीं होना चाहिए।

v) मनुष्य के समस्त कर्म, सही एवं गलत, की विवेचना करने के पश्चात धर्म के अनुसार करने चाहिए। नियम यह है कि सही कार्य को कीजिए एवं गलत कार्य से दूर रहिये।

भौतिक, सामाजिक एवं आध्यात्मिक रूप से समस्त विश्व की भलाई करना ही आर्य समाज का मुख्य उद्देश्य है। इसका तात्पर्य यह है कि अन्य कुछ समाजों की तरह, आय समाज एक कट्टरपंथी या साम्प्रदायिक संस्था नहीं है, जो केवल अपने सदस्या का भलाई हेतु कार्यों में कार्यरत हों। इस समाज को सारे विश्व की भलाई के लिए बनाया गया है। पुराने चरम सीमा के वैयक्तिक रूप के हिन्दु दृष्टिकोण से यह काफी भिन्न है, जिसमें प्रत्येक आकांक्षी केवल अपनी ही मुक्ति की कामना करता था। स्वामी दयानन्द का भी युवा अवस्था में यही उद्देश्य था जिसको बाद में स्वामी बिरजानन्द ने और अधिक विस्तत रूप प्रदान करके उससे यह प्रतिज्ञा कराई कि वह समस्त एव विश्व की भलाई में कार्यरत रहेगा।

vii) हमें समस्त व्यक्तियों के साथ उनके गुणों के अनुरूप स्नेह, धर्मपरायणता एवं सद्भावनाओं के साथ व्यवहार करना चाहिए। समस्त व्यक्तियों के साथ हमारे आचरण का आधार प्रेम एवं सद्भावना का होना चाहिए। न कि दुर्भावना, घृणा या असहनशीलता का। सम्पूर्ण जगत के लिए प्रेम एवं सद्भावना पर आधारित बनने से पृथ्वी पर स्वर्ग की अनुभूति होगी। इससे अधिक गुणवान व्यक्ति को अधिक सम्मान भी प्राप्त होगा।

मनुष्य मात्र की गरिमा की यही विशेषता होती है, परन्तु इसमें व्यक्ति के गुणों एवं अवगुणों, प्रतिमा या सामान्यता एवं अच्छाई एवं बुराई पर ध्यान न देते हुए समानता करने का उपदेश नहीं दिया जाता है। इसको वैदिक समाजवाद कहते हैं।

viii) हमको अज्ञानता को समाप्त करने एवं ज्ञान की बढ़ोत्तरी के लिए कार्य करना चाहिए। निरक्षरता, अज्ञानता एवं अंधविश्वास समस्त बुराइयों की जड़ होती है, जबकि ज्ञान द्वारा सर्वव्यापी कल्याण एवं आनंद की प्राप्ति होती है। बड़ी संख्या में आर्य समाज के मंचों पर दिये जाने वाले उपदेशों, डी.ए.वी. की शाखाओं एवं गुरुकुल की संस्थाओं द्वारा इस नियम को प्रचलित करके उसका रूपान्तर किया जा रहा है।

ix) किसी भी व्यक्ति को स्वयं अपनी उन्नति से संतुष्ट नहीं होना चाहिए, बल्कि समस्त मानव जाति की भलाई में स्वयं की भलाई की अनुभूति करनी चाहिए। इसका मतलब है कि समस्त मानव जाति का परमात्मा का स्वरूप होने के कारण एक ही अस्तित्व है या समाज के मानव स्वरूप की विभिन्न सीमाएं हैं और जैसे कि शरीर में से टांग को काट देने से बांह को सुख नहीं मिल सकता है। स्वार्थ की अपेक्षा परोपकार ही इसका सम्पूर्ण महत्व है। किसी समाज में यदि चारों तरफ भुखमरी या दुःख व्याप्त है, तो कोई भी व्यक्ति खुश नहीं रह सकता क्योंकि दुःख एवं भुखमरी सारी समाज की व्यवस्था को समाप्त कर देंगे। अन्य व्यक्तियों की भलाई करने से किसी का उपकार करना नहीं बल्कि स्वार्थ उजागर होता है।

x) समस्त मानव जाति की भलाई के लिए निर्धारित किये गए सामाजिक नियमों का पालन करना, सब व्यक्तियों के लिए अनिवार्य होता है, परन्तु प्रत्येक व्यक्ति को अपने कल्याण के लिए कार्य करने की स्वतंत्रता होती है। उदाहरण के लिए, कोई भी व्यक्ति यातायात के नियमों को तोड़ने या किसी की हत्या एवं चोरी करने के लिए स्वतंत्र नहीं होता क्योंकि ऐसे सब कानून सबकी भलाई के लिए बनाए गए हैं। परन्तु व्यक्ति की भलाई से संबंधित व्यक्तिगत मामलों में, प्रत्येक व्यक्ति को स्वतंत्रता प्राप्त होती है। इसका आशय यह है, कि यदि अन्य व्यक्तियों का कोई अहित न हो तो किसी भी व्यक्ति को अपने ढंग से कार्य करने की स्वतंत्रता प्राप्त होती है।

i) स्वामी दयानन्द ने आर्य समाज में, अपने लिए किस प्रकार की भूमिका की धारणा की थी?

.....

.....

.....

ii) लाहौर के आर्य समाज ने अपने सदस्यों के लिए कितने नियमों को निर्धारित किया था?

क) .....

ख) .....

ग) .....

घ) .....

ङ) .....

निष्कर्ष के रूप में हम कह सकते हैं कि ये दस नियम, उस सुखी एवं सभ्य समाज के महान अधिकार पत्र के रूप में हैं, जिसकी धारणा स्वामी दयानन्द ने की थी। वेदों को प्रधानता प्रदान करने वाले तीन नम्बर के नियम को छोड़ कर बाकी के सब नियम समस्त देशों एवं समस्त युगों में व्यक्तियों पर लागू होंगे।

सोचिए और करिए 1

जिस लाहौर (1877) में आर्य समाज के दस नियमों की एक सूची बनाइये। जिस आर्य समाजी को आप जानते हों, उनसे पूछिये कि क्या वे उसका सारांश आपको बता सकते हैं। उनकी टिप्पणियों को अपनी नोट बुक में लिख लीजिए तथा यदि संभव हो तो अध्ययन केंद्र पर अन्य छात्रों के साथ उन पर चर्चा कीजिए।

11.3.3 आर्य समाज के सदस्य (Members of the Arya Samaj)

विधिवत 22 सदस्यों की एक समिति चुनी गई, जिसके सदस्यों की सूची बहुत प्रभावपूर्ण है। इन सदस्यों में से आधे सदस्य विश्वविद्यालयों की डिग्री प्राप्त थे : पाँच सदस्य एम.ए. पास थे, तीन डाक्टर थे, एक वकील था एवं दो सदस्य बी.ए. पास थे। सन 1877 तक, एक दर्जन पंजाबियों से अधिक इन डिग्रियों को प्राप्त नहीं कर पाये थे। इसका मतलब है कि उनमें से करीब आधे आर्य समाज की समिति के सदस्य थे। यदि समिति के आधे सदस्य विश्वविद्यालयों की डिग्रियों से सम्मानित थे, तो अन्दाज यह लगाया जाता है कि अन्य अनेक आर्यसमाजी भी दसवीं कक्षा या और अधिक उच्च शिक्षा प्राप्त होंगे।

इससे, हम यह निष्कर्ष निकाल सकते हैं कि लाहौर की आर्य समाज की समिति में वास्तविक रूप से बहुत से शिक्षित पंजाबियों का प्रतिनिधित्व था।

समिति के 22 सदस्यों में ब्राहमण केवल एक था, जबकि खत्री 80 प्रतिशत से भी अधिक थे । यह बम्बई के आर्य समाज के सदस्यों की शैक्षिक योग्यताओं के बिल्कुल विपरीत था। दयानन्द के लिए इतने उच्च शिक्षा प्राप्त व्यक्तियों को आर्य समाज में सम्मिलित करना एक गौरव का विषय था, क्योंकि इन व्यक्तियों में आर्य समाज एवं उसके कार्यक्रमों को बहुत ही उच्च स्तर पर ले जाने की क्षमता थी। समाज के लिए लाहौर प्रत्येक दृष्टि से प्रगति का द्वार साबित हुआ।

बॉक्स 11.3 आर्य समाज के सामाजिक सिद्धान्त

आर्य समाज के सामाजिक सिद्धान्त, वेदों के उद्देश्यों को प्रतिबिम्बित करने के ध्येय से सृजित किए गए थे और ये निम्नलिखित थे :

i) ईश्वर का पिता होना तथा मनुष्य का भाईचारा

ii) लिंग की समानता अर्थात लिंग के आधार पर भेदभाव का न होना

iii) लोगों व राष्ट्रों के बीच न्याय तथा ईमानदारी

iv) सभी को उनकी योग्यतानुसार समान अवसर

v) सभी के प्रति प्रेम व दया

11.3.4 वेदभाष्य का प्रकाशन (Publication of Vedabhashya)

स्वामी दयानन्द की वेदों के प्रति अटूट आस्था थी, परन्तु जब भी कोई व्यक्ति वेदों के किसी मंत्र का प्रचलित मतलब बताते हए उसका जिक्र करता था. तो दयानन्द सदैव उस मंत्र की अपनी अलग व्याख्या किया करते थे। अपने कुछ मित्रों द्वारा आग्रह किये जाने पर स्वामी दयानन्द ने बहुत उत्साहपूर्वक वेदभाष्य का कार्य करना शुरू कर दिया। उनका कहना था कि अधिकांश वेद मंत्रों के तीन अर्थ होते हैं :

i) एक चढ़ावे एवं धार्मिक कृत्यों से संबंधित (सयाना आदि की परम्परागत व्याख्या);

ii) आध्यात्मिक एवं दार्शनिक अर्थ (दयानन्द का योगदान); एवं

iii) वैज्ञानिक अर्थ (दयानन्द द्वारा निर्मित)।

अपने जीवन के अन्तिम कुछ वर्षों में, स्वामी दयानन्द ने, स्वयं अपने आपको एवं अपने समाज को हिन्दुत्व के विश्वव्यापी विस्तार की गतिविधियों में संलग्न कर लिया था। हरिद्वार में उनके द्वारा जारी की गई जन सूचना में इस सिद्धान्त का स्पष्ट उल्लेख किया गया है। प्रतिवाद के बजाय जनमत को मान्यता प्रदान की जानी चाहिए। आर्य समाज, जिसका पहले से ही कुछ साम्प्रदायिकता की तरफ झुकाव था, उसको समस्त सदभावना वाले हिन्दुओं की मान्यता प्रदान करके एक मिलन क्षेत्र के रूप में मानना चाहिए। इसी विचार से ब्रह्मवादियों के साथ गठबंधन किया गया था एवं ''परोपकारी सभा'' के सन्यासियों की एक समिति का संगठन किया गया था। परन्तु आगे दिये गए तीन लगातार आन्दोलनों में आर्य समाज का सक्रिय रूप से भाग लेना सबसे महत्वपूर्ण बात थी :

i) इन्द्रमणि का मसला (समाज के नियमों को उल्लंघन करने के संबंध में)

ii) गऊ सुंरक्षा एवं

iii) हिन्दी का सार्वजनिकीकरण

इन तीनों कारणों में से, प्रत्येक के लिए अनेक हिन्दू जातिवाद, वर्ग एवं प्रान्तीयता के दायरे से ऊपर उठकर एक हो गये। आर्य समाज ने उत्साहपूर्ण रूप से भाग लेकर अपने आप का विस्तृत हिन्दू राष्ट्रीयता के समर्थक के रूप में प्रेक्षेपित किया। यथार्थ में इन आन्दोलनों को मूल रूप से स्वामी दयानन्द ने प्रारम्भ नहीं किया था. परन्तु उन्होंने इन आन्दोलनों को, जिनमें हिन्दू एक बहुत बड़ी संख्या में समर्पित थे एवं इसे अच्छी तरह चला रहे थे, अपनी पूर्ण सहायता प्रदान कर रहे थे। इस प्रकार स्वामी दयानन्द ने कट्टरपंथी एवं साम्प्रदायिक हिन्दुओं को अपने समाज का पूर्ण सहयोग प्रदान किया था एवं यह आशा की थी कि इससे समस्त हिन्दू समुदाय एक होकर एक संगठन के रूप में उभरेगा।

सोचिए और करिए 2

अपने नगर के किसी आर्य समाज केन्द्र का दौरा कीजिए तथा सदस्यों से आर्य समाज की समकालीन भूमिका के बारे में वर्णन करने के लिए कहिये।

स्वामी दयानन्द के दृष्टिकोण में विस्तार का अन्य महत्वपूर्ण प्रतीक यह था कि अपने जीवन के अन्तिम वर्षों से, उसने पहली बार दक्षिण भारत की तरफ ध्यान दिया था। ''आर्य-व्रत'' को वह सदैव से विन्धाचल की चोटी के उत्तरी क्षेत्र को मानता रहा था। परन्तु समय के साथ-साथ उनके दृष्टिकोण में बदलाव आया एवं उसका विस्तार हुआ एवं उसने राष्ट्रीय एवं राजनीतिक पहलू का रूप धारण कर लिया और उसका ध्यान दक्षिण की तरफ आकर्षित हुआ। परन्तु सम्पूर्ण भारत का यह सुनहरी सपना स्वामी दयानन्द की असामयिक मृत्यु के कारण बिखर गया।

11.4 आर्य समाज आन्दोलन एवं समाज सुधार (Arya Samaj Movement and Reform)

आर्य समाज ने, समूचे उत्तरी भारत में बालक व बालिकाओं के लिए बड़ी संख्या में शिक्षा संस्थान खोले। अनाथालय खोले गए और इस तरह से ईसाई मिशनरियों को, लोगों को, ईसाई धर्म में शामिल करने से रोका गया। आर्य समाज ने भूकम्प राहत के लिए सेवा, कार्य किया। 1923 में जब मालाबार के मोपलाओं द्वारा जबर्दस्ती हिन्दुओं को इस्लाम धर्म अपनाने पर विवश कर दिया था, तब आर्य समाज ने ही उन्हें दोबारा हिन्दू धर्म में शामिल किया था। महात्मा गांधी द्वारा अछूतोद्धार का काम अपने हाथों में लिए जाने से पहले आर्य समाज ही था जिसने उन्हें हिन्दू समाज में बराबरी का दर्जा प्राप्त सदस्यों के रूप में मान्यता दिलाने हेतु प्रयास किये थे। उन्होंने उनके बीच फैले अंधविश्वासों को दूर करने तथा उन्हें धर्म की बुनियादी प्रस्थापनाओं की शिक्षा देने के लिए भी अथक प्रयास किया था।

आर्य समाज के शिक्षा कार्यक्रम के तहत दयानन्द ने अनेक गुरुकुलों की स्थापना की। पहले डी.ए.वी. (दयानन्द ऍग्लोवैदिक) कॉलेज की स्थापना लाहौर में दयानन्द की स्मृति को अमर बनाने के लिए 1883 में अजमेर में उनका निधन हो जाने के बाद की गई। यह संस्थान देश में राष्ट्रीय शिक्षा का केन्द्र बिन्दु बन गया। लाहौर कॉलेज के संस्थापकों का इरादा, विद्यार्थियों को उनकी आध्यात्मिक, सांस्कृतिक एवं धार्मिक जड़ों से अलग किये बिना उनके भीतर वैज्ञानिक दृष्टिकोण विकसित करना था। उस समय तक केवल ब्रिटिश सरकार अथवा विदेशी ईसाई मिशनरियों द्वारा ही इस प्रकार के अंग्रेजी माध्यम के विद्यालय स्थापित किये गये थे। हालांकि दयानन्द के कुछ अनुयायियों, उदाहरण के तौर पर, स्वामी श्रद्धानन्द ने शिक्षा के माध्यम के साथ सहमति प्रकट नहीं की और उत्तर प्रदेश में हरिद्वार के निकट कांगड़ी में, एक गुरुकुल नामक समानान्तर संस्थान की स्थापना की और वह भी आगे चलकर काफी विकसित हुआ। यह आवासीय पाठशालाओं के प्राचीन उद्देश्य पर आधारित था, जिसमें 'शिक्षकगण एवं विद्यार्थी एक परिवार की तरह रहते थे। आज भारत भर में गुरुकुल की संख्या 50 से अधिक है, जिनमें से अधिकांश हरियाणा में हैं। उस समय दोनों पक्षों (डी.ए.वी. तथा गुरूकुल) के बीच विवाद उठ खड़ा हआ था, क्योंकि दोनों ही दयानन्द का वास्तविक अनुयायी होने का दावा कर रहे थे। शिक्षा केन्द्र, सरकारी नियंत्रण से पूरी तरह मुक्त थे और ब्रिटिश विरोधी माने जाते थे। पुनः डी.ए.वी. कॉलेज, आन्दोलन के नेतृत्व में आर्य समाज की राजनीतिक तौर पर उद्धार शाखा ही थी, जिसने शिक्षित मध्यम वर्ग पर आधिक गहरा प्रभाव डाला। मध्यम वर्ग 19वीं शताब्दी में यह भारतीय नवजागरण का अग्रदूत था । इस तरह आर्य समाज की शिक्षा नीति लार्ड विलियम बैण्टिक (1834 की नीति)

तथा ईसाई मिशनरियों की नीति से पूरी तरह भिन्न थी, जिनका उद्देश्य तो प्रशासन के लिए लिपिक तैयार करना था अथवा बिना धर्मान्तरण किये हुए ईसाई पैदा करना था।

11.4.1 हिन्दू धर्म को तीन चुनौतियाँ (Three Challenges to Hinduism)

हिन्दू धर्म विकसित हुआ एवं पनपा और इसमें किसी भी नये व्यक्ति को अपने अन्दर सम्मिलित करने की क्षमता थी। यह धर्म साधारण रूप से अपनी षाष्वत प्रकृति के बारे में सुनिश्चित था, यानि यह विश्वास किया जाता था कि यह धर्म सदा बना रहेगा। परन्तु इतिहास साक्षी है, कि इस धर्म को तीन बार संघर्षपूर्ण चुनौतियों का सामना करना पड़ा था। एक बार बौद्ध एवं जैन धर्मों से, बाद में इस्लाम से एवं अन्त में ईसाई धर्म से । अंग्रेजी शासनकाल में, हिन्दुत्व पर तीसरी बार, जो आखिरी विपदा आई थी, उसमें आर्य समाज ने इस धर्म की रक्षा करने में एक महत्वपूर्ण भूमिका निभाई थी। हिन्दुओं की बहुसंख्या में, ईसाई धर्म में परिवर्तनों पर आर्य समाज ने सफलता पूर्वक रोक लगा दी थी। हिन्दुत्व की प्रतिरक्षा में आर्य समाज ने एक महत्वपूर्ण भूमिका निभाई थी।

11.4.2 आर्य समाज एवं महिलाओं का उद्धार (Arya Samaj and Emancipation of Women)

हरिजनों की भांति महिलाओं को दासों का दास कहा जाता था। पुरुष, अंग्रेजों के दास थे एवं महिलाएं इन दास बनाए गए पुरुषों की दास थीं। महिलाओं के अधिकार बेहद सीमित होते थे, उनको मामूली स्वतंत्रताएं प्राप्त थी एवं उनको पुरुष की मान्यता शायद ही प्रदान की जाती थी।

आधुनिक काल में महिलाओं को अधिकार एवं समानता दिलवाने में आर्य समाज के संस्थापक स्वामी दयानन्द अगुआओं में से एक थे। उन्होंने स्त्रीय/पुरुष की बराबरी के पक्ष का समर्थन किया था। दयानन्द ने महिलाओं को वेदों के अध्ययन करने की अनुमति प्रदान की थी, जो उस समय एक क्रान्तिकारी कदम माना जाता था। उनको गायत्रीमंत्र के उच्चारण करने की भी अनुमति प्रदान की गई थी। जबकि परंपरा उन्हें इस तरह की सुविधा देने की इजाजत नहीं देती थी। दयानन्द ने बलपूर्वक यह तर्क प्रस्तुत किया था कि अकेले ऋग्वेद में 200 मंत्र महिला ऋषियों द्वारा बनाए गए हैं।

उन्होंन बाल विवाह के विरुद्ध भी एक धर्म युद्ध चलाया था। स्वामी दयानन्द ने आदेश दिया था, कि किसी भी कन्या का विवाह 16 वर्ष की आयु से पूर्व एवं लड़के का 25 वर्ष की आयु के पूर्व नहीं करना चाहिए। इस प्रकार उसको उस समय की प्रचलित ''शास्त्रीय निषेधाज्ञा' का सामना करना पड़ा था, जिसके अनुसार कन्या को यदि अपने पिता के घर में मासिक धर्म हो तो कन्या के पिता एवं भाई को नरक जाना पड़ता था। स्वामी दयानन्द ने इस धारणा को निरस्त कर दिया था। उसने यह तर्क दिया था कि इस कुदरती प्रक्रिया के लिए किसी व्यक्ति को नरक में क्यों जाना चाहिए।

स्वामी दयानन्द का कहना था कि पुरुष एवं महिलाओं को केवल एक बार विवाह करना चाहिए। किसी युवा विधवा के लिए विधवा विवाह की अपेक्षा वह ''नियोग'' को वरीयता प्रदान करता था। ''नियोग'' से उनका आशय अपने दिवंगत पति के भाई या किसी अन्य आत्मीय के साथ एक या दो पुत्र प्राप्त करने के लिए अस्थायी रूप से पुनर्मिलन करना था, परन्तु बच्चे दो से अधिक नहीं होने चाहिए। परन्तु ''नियोग'' के विचार को आर्यों ने स्वीकार नहीं किया था और स्वामी दयानन्द ने भी इसके लिए अधिक दबाव नहीं डाला था। वास्तव में, पजाब के आर्य समाज ने विधवा विवाह के लिए विज्ञापन देकर कुछ विवाह सम्पन्न करवाये थे और स्वामी दयानन्द ने उनको अपनी स्वीकृति प्रदान की थी।

आर्य समाज ने, सामान्य तौर पर जन साधारण की शिक्षा में काफी सुधार किया था एवं महिलाओं की शिक्षा का बहुत प्रभावी ढंग से प्रचार किया था। जैसा कि पहले उल्लिखित है, इसने सारे देश में लड़के एवं लड़कियों, दोनों के लिए अनेक स्कूलों एवं विद्यालयों की व्यवस्था की है जहां मातृभाषा में शिक्षा प्रदान की जाती है। दयानन्द ऐंग्लो वैदिक विद्यालयों की स्थापना की गई। कुछ कट्टरपंथी आर्य समाजियों का विचार था कि इन विद्यालयों में दी जाने वाली शिक्षा समुचित रूप से वैदिक नहीं है, इसलिए मुंशी राम के नेतृत्व में उन्होंने हरिद्वार में गुरूकुल को शुरू किया, जहां प्राचीन रीति-रिवाजों से शिक्षा प्रदान की जाती है। महिलाओं के लिए स्कूलों एवं विद्यालयों और गुरूकुलों को खोलने में अग्रणी होने के कारण आर्य समाज ने सन 1896 में जालन्धर में प्रथम कन्या महाविद्यालय की स्थापना की थी।

बोध प्रश्न 2

i) लाहौर के आर्य समाज के सदस्यों की शैक्षिक योग्यताओं के बारे में एक संक्षिप्त विवरण लिखिए।

.....

.....

.....

.....

.....

ii) महिलाओं के उद्धार में आर्य समाज की भूमिका को विस्तार से लिखिये।

.....

.....

.....

.....

.....

11.4.3 राजनीति और आर्य समाज (Politics and the Arya Samaj)

दयानन्द केवल एक सामाजिक तथा धार्मिक सुधारक ही नहीं थे। वे भारत के राष्ट्रीय एवं राजनीतिक जागरण के अग्रदूत भी थे। आर्य समाज की स्थापना 1875 में, भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस की स्थापना से एक दशक पहले हुई थी। दयानन्द ने पृष्ठभूमि का निर्माण किया और यह घोषणा की, कि विदेशी सरकार स्व-शासन का स्थान नहीं ले सकती। लाला लाजपत राय ने उल्लेख किया था कि अंग्रेज हमेशा आर्य समाज को शक की नजर से देखते थे। इसके चलते अक्सर इसके सदस्यों पर निर्वासन के मुकदमे आदि चलाए गए। इसके सदस्यों को केवल इस आधार पर नागरिक एवं सैन्य सेवाओं से निकाल दिया गया कि वे आर्य समाज के सदस्य हैं। एक ऐसे समय पर राजनीतिक स्वाधीनता की इच्छा की खुलेआम घोषणा करना, जबकि ऐसा कहने पर जेल में बंद कर दिया जाना आम बात थी। इसके सदस्यों के नैतिक साहस का परिचय दिया है। हालांकि आर्य समाज ने हमेशा यह कहा है, कि वह एक धार्मिक, सामाजिक एवं सांस्कृतिक संगठन है।

महात्मा गांधी द्वारा भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस के वफादारी वाले चरित्र से 'उसके एक जन राजनीतिक आन्दोलन (उदार से उग्र दृष्टिकोण) में संक्रमण किये जाने में आर्य समाज के आन्दोलन ने एक उल्लेखनीय भूमिका अदा की थी, जैसा कि भारत के प्रथम राष्ट्रपति डॉ.

राजेन्द्र प्रसाद ने भी स्वीकार किया था। कांग्रेस द्वारा भी, आर्य समाज के अधिकांश समाज सुधार के मुद्दों को राष्ट्रीय आन्दोलन के हिस्से के तौर पर उठाया गया। आर्य समाज राजनीतिक स्वतंत्रता का पक्षधर था तथा उस समय सामाजिक, सांस्कृतिक परिवर्तन दिखाई दिया, जबकि कांग्रेस ने छुआछूत मिटाने, महिलाओं के उत्थान तथा अन्य सुधारों को अपनाया था। आर्य समाज के सदस्यों की एक विशाल संख्या, महात्मा गांधी के सक्रिय समर्थक बन गई थी। किन्तु आर्य समाज सत्ता की राजनीति से परे समाज सुधार आन्दोलन ही बना रहा। यह गैर राजनीतिक संगठन है।

डी. वेबेल के अनुसार : स्वतंत्रता प्राप्त करने के बाद के परिदृश्य में सत्ता की राजनीति आर्य समाज में भी प्रवेश करती दिखाई दी। यद्यपि 1915 में इसे उभरते हुए देखा गया, किन्तु 1920 के बाद से ज्यों ही गांधी के नेतृत्व में कांग्रेस लोकप्रिय होने लगी इसका प्रभाव घटने लगा। स्वतंत्रता से पूर्व के दिनों में राजनीतिक पुररूत्थान का प्रभाव बहुत कम हो गया। इसके अलावा हिन्दू धर्म के प्रभाव ने भी इसके अस्तित्व के लिए खतरा पैदा कर दिया। मौजूदा समय में लाला लाजपत राय की चेतावनी के लगभग 65 वर्ष बाद भी आर्य समाज के सामने हिन्दुत्व द्वारा मिटा डालने की चुनौती मौजूद है जिसे एक समय पर इसने बचाने की कोशिश की थी। दरअसल आर्य समाज हिन्दुत्व को बचाने की बजाय, यदि स्वयं अपने अस्तित्व के बारे में विचार करे, तो यह बेहतर ढंग से काम कर सकता है।

स्वामी दयानन्द एवं आर्य समाज ने राष्ट्रीय आन्दोलन में निम्नलिखित रूप में योगदान किया था:

1) हिन्दी भाषा को बढ़ावा

2) स्वदेशी एवं खादी का समर्थन; और

3) नमक-कर के विरोध को सहमति प्रदान करके नमक आन्दोलन को समर्थन।

स्वामी दयानन्द के, ''वेदों में पुनः आस्था'' के नारे के कारण कुछ आलोचकों ने दयानन्द को प्रतिक्रियावादी की संज्ञा प्रदान की है, जबकि स्वामी दयानन्द ने भारत के आधुनिकरण का संचालन उसी रूप में किया था, जैसा आधी शताब्दी के बाद गांधी जी ने किया था।

11.5 सारांश

इस इकाई में, हमने आर्य समाज की व्याख्या एक सामाजिक आन्दोलन के रूप में की है। हमने 19वीं शताब्दी में सुधार की आवश्यकता से शुरुआत की तथा फिर आर्य समाज की स्थापना, इसके संगठन, सिद्धान्तों, नियमों, प्रारंभिक सदस्यों तथा वेदभाश्य के प्रकाशन आदि पर विचार किया। अगले भाग में हमने आर्य समाज के आन्दोलन व सुधारों पर चर्चा की। इसके अंतर्गत हिन्दू धर्म को चुनौती के प्रति समाज की प्रतिक्रिया, महिलाओं का उत्थान तथा राजनीति में इसकी भूमिका शामिल हैं। इस तरह हमने एक आधुनिक धार्मिक आन्दोलन के रूप में आर्य समाज की एक स्पष्ट तस्वीर प्रस्तुत की है।

11.6 संदर्भ

आर्य, के.एम.आर.य 1987, *स्वामी दयानन्द सरस्वती : ए स्टडी ऑफ हिज लाइफ एंड वर्क* मनोहर, दिल्ली।

बहादुरमल, 1962, *दयानन्द : ए स्टडी ऑफ हिन्दुइज्म,* वी.वी.के. इंस्टीट्यूट, होशियारपुर।

दयानन्द स्वामी, 1972, *सत्यार्थ प्रकाश,* कपूर ट्रस्टय बहालगढ़, हरियाणा।

डी. वेबल, 1983, *द आर्य समाज : हिन्दू विदाउट हिन्दुइज्म*, विकास, दिल्ली।

जॉर्डनस, जे.टी.एफ., 1978, *दयानन्द सरस्वती हिज लाइफ एंड आइडियाज*, ऑक्सफोर्ड यूनीवर्सिटी प्रेस, बम्बई।

इन्दिरा गांधी राष्ट्रीय मुक्त विश्वविद्यालय पाठ्यसामग्री (2005) *समाज और धर्म* (ESO-15), नई दिल्ली : इग्नू।

11.7 बोध प्रश्नों के उत्तर

बोध प्रश्न 1

i) दयानन्द ने स्वयं को आर्य समाज की एक मार्गदर्शक ज्योति के रूप में प्रस्तुत किया। वह स्वयं को कोई नेता अथवा गुरू नहीं मानते थे, जिसका लोग अनुसरण करें।

ii) लाहौर में आर्य समाज ने मूल 28 नियमों को सरल बनाकर केवल 10 नियमों में बदल दिया। सदस्यता के इन नियमों में से पांच निम्नलिखित थे :

   i) हर सच्चे ज्ञान का स्रोत ईश्वर है;

   ii) ईश्वर सत्य है, ईश्वर ज्ञान है व ईश्वर परमानन्द है;

   iii) वेद सच्चे ज्ञान की पुस्तकें हैं;

   iv) सत्य को अपनाओ, असत्य को छोड़ो;

   v) प्रत्येक व्यक्ति को अपने धर्म का पालन करना चाहिए।

बोध प्रश्न 2

i) शुरू के लाहौर आर्य समाज के सदस्य उच्च शिक्षा प्राप्त थे और उनमें वकील, डाक्टर, स्नातक एवं स्नातकोत्तर मौजूद थे। इस तरह समाज के सदस्य उच्च शिक्षा प्राप्त थे।

ii) औपनिवेशिक भारत में महिलाएं गुलामों की भी गुलाम थीं। दयानन्द ने इस गुलामी के विरूद्ध सघर्ष किया। उन्होंने बाल-विवाह के खिलाफ भी संघर्ष किया तथा नियोग को प्रस्तुत किया तथा अनेक गहरी जड़े जमाये बैठी रूढ़ियों का विरोध किया। उन्होंने विधवाओं के पुनर्विवाह कराये। महिलाओं की शिक्षा के लिए दयानन्द ने "गुरूकुल" नामक महिलाओं के शिक्षा संस्थान शुरू किए।

इकाई 12 नवयुग आंदोलन*

इकाई की रूपरेखा

12.0 उद्देश्य

12.1 प्रस्तावना

12.2 रामकृष्ण मिशन की स्थापना

12.3 रामकृष्ण मिशन की विचारधारा

- 12.3.1 विचारधारा एवं उद्देश्य
- 12.3.2 मिशन की गतिविधियाँ

12.4 रामकृष्ण मिशन का सांगठनिक ढांचा

- 12.4.1 मठ और मिशन
- 12.42 रामकृष्ण विवेकानन्द मिशन
- 12.4.3 शासी निकाय

12.5 वित्तीय सहायता एवं गतिविधियां

- 12.5.1 गतिविधियों को वित्तीय सहायता
- 12.5.2 सामाजिक कल्याणकारी गतिविधियां
- 12.5.3 जनता की सहभागिता
- 12.5.4 सांस्कृतिक गतिविधियाँ

12.6 जन्मदिन समारोह

- 12.6.1 त्रिदेव की अवधारणा
- 12.6.2 श्री रामकृष्ण जन्मदिन समारोह
- 12.6.3 श्री शारदा देवी जन्मदिन समारोह
- 12.6.4 स्वामी विवेकानन्द जन्मदिन समारोह
- 12.6.5 जन्मदिन समारोह किस तरह से मनाये जाते हैं?

12.7 रामकृष्ण मिशन की अन्य गतिविधियाँ

- 12.7.1 अन्य समारोह
- 12.7.2 भक्त सम्मेलन
- 12.7.3 मिशन के समक्ष मौजूद चुनौतियाँ

12.8 आधुनिक आन्दोलन के रूप में रामकृष्ण मिशन

- 12.8.1 मिशन का इतिहास
- 12.82 वर्तमान स्थिति

12.9 सारांश

12.10 संदर्भ

12.11 बोध प्रश्नों के उत्तर

12.0 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के बाद, आपः

- रामकृष्ण मिशन की विभिन्न सामाजिक, धार्मिक, सांस्कृतिक गतिविधियों के बारे में सामान्य विचार सृजित कर सकेंगे;
- जनता की जीवन स्थितियों को सुधारने तथा विश्व के मानव समुदाय के दुखों को दूर करने में, इस तरह के संगठनों की उपयोगिता को समझ सकेंगे; और

* इग्नू पाठ्यसामग्री से अंगीकृत : *समाज और धर्म* (ESO15) की रनझ द्वारा रचित इकाई 27 का नीता माथुर द्वारा संशोधन।

- उन चुनौतियों के बारे में जागरूक होंगे जो कि इस धार्मिक संगठन के समक्ष मौजूद हैं तथा कई टुकड़ों में विभाजित हमारे इस आज के जगत में एक धार्मिक आन्दोलन के रूप में इसकी चुनौतियों और भावी कार्यों पर ध्यान केंद्रित कर सकेंगे।

12.1 प्रस्तावना

नवयुग की कई विशेषताओं में से एक है व्यापकरूप से संघटित मूल्यों जैसे स्वतंत्रता, आत्मउत्तर दायित्व, आत्मनिर्णय एवं आत्म निर्भरता की समझ की पुनर्स्थापना। दूसरी विशेषता इन मूल्यों से संबद्ध धारणाओं एवं विचारों (जैसे बेहतरी के लिए बदलना संभव है, स्वयं के प्रति सच्चा होना, अपने जीवन का उत्तरदायित्व स्वयं लेने का महत्व, परंपराओं के प्रति अविश्वास, अतीत द्वारा थोपी गये प्रतिबंधों से स्वयं को मुक्त करना) का नवीनीकरण है। नवयुगकालीन धार्मिक आंदोलन मनुष्य को असुरक्षा की भावना से, विशेषकर स्वयं के अस्तित्व से जुड़ी असुरक्षा को सामना करने योग्य बनाते हैं। लोग परंपराओं से और स्वयं की अनुभूति से जुड़ी समस्याओं के मुख्य धारा विषयक समाधानों विश्वास खो बैठते हैं तब इस आशा से कि नवयुग धार्मिक आंदोलनों में भागेदारी से उनकी समस्याओं को प्रभावी समाधान मिलेंगे, नवयुग आंदोलनों की ओर रुख करते हैं (हील्स 1996)। इस इकाई में हम युग आंदोलन के प्रतिनिधि के रूप में रामकृष्ण मिशन पर ध्यान केंद्रित करेंगे।

इस इकाई में हम रामकृष्ण मिशन की स्थापना, इसकी विचारधारा तथा सांगठनिक ढांचा, तथा रामकष्ण मिशन की विभिन्न गतिविधियों पर विचार करेंगे। हम रामकृष्ण, शारदा देवी नया विवेकानन्द के जन्मदिन समारोहों के सांकेतिक महत्व पर भी विचार करेंगे। अंत में हम जति सम्मेलनों तथा अन्य विविध गतिविधियों का भी अध्ययन करेंगे। अब यह बताना जरूरी है कि यह इकाई के अंत में सूचीबद्ध उपयोगी पुस्तकों के अध्ययन पर आधारित है।

12.2 रामकृष्ण मिशन की स्थापना (Founding of Ramakrishna Mission)

आप यह जानना चाहेंगे कि रामकृष्ण मिशन की स्थापना कैसे और कब हुई, किसने इसकी स्थापना की, तथा किस तरह से धीरे-धीरे इसका प्रचार-प्रसार हुआ।

श्री रामकृष्ण, बंगाल के एक गृहस्थ संत थे। उनका जन्म 1836 में कामरपुकुर में हुआ था। 16 अगस्त, 1886 की सुबह उनकी मृत्यु हो गई थी। वे स्वयं, शुरू में दक्षिणेश्वर मंदिर के पुजारी रहे थे, किन्तु वे पुजारी की भूमिका से कहीं आगे निकल गये और एक योगी तथा सन्यासी के लक्षण उनके भीतर प्रतिबिम्बित हुए। यद्यपि शारदा देवी से उनका विवाह हुआ था किन्तु वे दोनों कभी भी पति-पत्नी की तरह नहीं रहे। रामकृष्ण की नजर में सभी धर्मों का ईश्वर, एक ही था, भले ही उसकी पूजा, उन धर्मों द्वारा स्वयं ही प्रस्तावित, अलग-अलग तरीकों से की जा सकती थी। श्री रामकृष्ण का संदेश यही था कि ईश्वर की प्राप्ति ''औरत तथा स्वर्ण'' का त्याग करके ही संभव हो सकती है। रामकृष्ण के एकतावाद ने अन्य सभी विचारों व मार्गों को सत्य की एकता के अनुभव के रूप में घटाकर रख दिया। श्री रामकृष्ण मिशन ने स्वामी विवेकानन्द को सत्य के अनेक अनुभव प्रदान करके उन्हें अपने विचारों में ढाल दिया।

उनकी मृत्यु के तुरंत बाद ही, 1886 में श्री रामकृष्ण के नाम पर एक मठवादी व्यवस्था का गठन किया गया, जो कि कोलकाता के उत्तर में करीब तीन कि.मी. की दूरी पर बारानागौर में है। यह मठवादी व्यवस्था उनके सन्यासी शिष्यों द्वारा स्वामी विवेकानन्द के नेतृत्व में गठित की गई।

वास्तव में उन्होंने ही इस व्यवस्था की नींव रखी थी। गुरु रामकृष्ण ने स्वयं ही अपनी बीमारी के दौरान इसे स्थापित कर दिया था। उन्होंने स्वामी विवेकानन्द को इस आशय के निर्देश दिये थे कि इस व्यवस्था का गठन एवं संचालन किस तरह से किया जाना है।

माँ श्री शारदा देवी, जो कि श्री रामकृष्ण की पत्नी थी, मठ और मिशन स्थापित करने के पीछे महान् आध्यात्मिक प्रेरणा उन्हीं ही की थी।

1899 में, मठ को कोलकाता के उत्तर के लगभग 6 कि.मी. की दूरी पर गंगा के उस पार बेलूर में स्थित मौजूदा स्थल पर ले. जाया गया।

1897 के साल का मई का महीना, भारत में आधुनिक धार्मिक आन्दोलनों के इतिहास में दर्ज रहेगा, जब कि स्वामी विवेकानन्द तथा उनके मुट्ठीभर सहयोगियों ने रामकृष्ण मिशन की शुरुआत की थी। 4 मई, 1909 को 1860 के अधिनियम, ग्ग्, पंजीकरण संख्या 1917 आफ 1909-10 के साथ रामकृष्ण मिशन के नाम से यह पंजीकृत हुआ। स्वामी विवेकानन्द और रामकृष्ण के बीच संबंधों के बारे में जानने के लिए बॉक्स सं. 12.01 देखें।

12.3 रामकष्ण मिशन की विचारधारा (Ideology of the Ramakrishna Mission)

रामकृष्ण मिशन की स्थापना, कुछ मौलिक विचारों को ध्यान में रखकर की गई थी। नीचे हम उन पर विचार करेंगे।

12.3.1 विचारधारा एवं उद्देश्य (Ideology and Objects)

रामकृष्ण मिशन की विचारधारा एवं उद्देश्य निम्नलिखित थे :

i) वेदान्त के अध्ययन को प्रकट तथा प्रोत्साहित करना तथा इसके सिद्धान्तों को रामकृष्ण मिशन द्वारा प्रतिपादित तथा स्वयं उनके जीवन में साकार हुई व्याख्या को प्रोत्साहन देना तथा व्यापक रूप से तुलनात्मक धर्मशास्त्रों के अध्ययन को प्रकट व प्रोत्साहित करना। वेदान्त एक हिन्दू दर्शन है जो कि सभी प्रकार के सत्य की एकरूपता की शिक्षा देता है। यह कि सभी की उत्पत्ति सत्य से हुई है और सत्य तक ही सभी को वापस पहुचना है। अतः सत्य को ध्यान में रखते हुए किये गये कामों के अलावा सभी काम दिखावा और भ्रामक हैं।

ii) कलाओं, विज्ञान तथा उद्योग के अध्ययन को प्रकट करना तथा प्रोत्साहन देना।

iii) उपर्युक्त उल्लिखित ज्ञान की सभी शाखाओं में शिक्षकों को प्रशिक्षण देना तथा उन्हें जनता तक पहुंचाने में सक्षम बनाना।

iv) जनता के बीच शिक्षा के काम को जारी रखना।

v) विद्यालयों, महाविद्यालयों, विश्वविद्यालयों. अनाथालयों, कारखानों, प्रयोगशालाओं, अस्पतालों डिस्पैन्सरियों की स्थापना करना, कमज़ोर, अपंग एवं असहाय लोगों के लिए घर, अकाल राहत कार्य तथा इसी तरह के अन्य शैक्षिकध्अथवा परोपकारी कामों व संस्थाओं को स्थापित करना, उनका रख-रखाव करना तथा उन्हें संचालित करना व सहायता प्रदान करना।

vi) उन पत्र-पत्रिकाओं, पुस्तकों अथवा पर्यों का मुद्रण तथा प्रकाशन, बिक्री अथवा वितरण निशुल्क अथवा दाम सहित करना, जिन्हें अपने उद्देश्यों का प्रसार करने के लिए एसोसिएशन द्वारा जरूरी समझा जाये।

vii) पूर्व उल्लिखित किसी भी उद्देश्य को आगे बढ़ाने के लिए प्रत्यक्ष अथवा परोक्ष रूप से अनुमान लगाते हुए किसी भी अन्य कार्य को जारी रखना, जिसे एसोसिएशन आसानी से संचालित कर पाने में सक्षम महसूस करता हो।

आप रामकृष्ण मिशन के इन विचारों को निम्नलिखित शीर्षकों के तहत रख सकते हैं:

i) आदर्श: आत्मा की मुक्ति तथा मानवता की सेवा;

ii) उद्देश्य सनातन धर्म की दीक्षा देना तथा उस पर अमल करना, जो कि श्री रामकृष्ण तथा स्वामी विवेकानन्द के जीवन तथा शिक्षाओं में एक षाष्वत धर्म के रूप में रचा बसा था;

iii) ध्येय: त्याग एवं सेवा, सभी धर्मों के बीच सद्भाव,

iv) विधि : काम एवं पूजा।

12.3.2 मिशन की गतिविधियाँ (Activities of the Mission)

मिशन के विभिन्न व्यवहारों पर आधारित विचार प्रदान करते हुए इसकी विस्तृत गतिविधियों का ब्यौरा इस प्रकार है;

i) पूजा : इसके तहत मठ के अनुयायियों का विशेष प्रशिक्षण तथा धार्मिक उपदेश शामिल है।

ii) एक सदाचारी एवं आध्यात्मिक पृष्ठभूमि के साथ सामान्य एवं तकनीकी शिक्षा, अन्य सामान्य सेवाओं में शामिल है;

iii) चिकित्सीय सेवाएं;

iv) अकाल एवं विपत्ति राहत कार्य;

v) ग्राम उत्थान;

vi) सभी वर्गों के श्रमजीवी लोगों के बीच काम करना; तथा

vii) अन्य सांस्कृतिक गतिविधियाँ;

अब, जबकि हमने रामकृष्ण मिशन की विभिन्न गतिविधियों को सूचीबद्ध कर दिया है, अब आप यह जानना चाहेंगे कि मिशन की इन विभिन्न गतिविधियों को किस तरह से संगठित किया जाता है। इस सूची से यह स्पष्ट है कि मिशन के पास भी मीमांसात्मक से लेकर व्यावहारिक गतिविधियों की एक बोधशील योजना मौजूद है।

बॉक्स 12.1 श्री रामकृष्ण तथा उनके अनुयायी ने मिशन को साकार बनाया

इस कोष्ठक में यह दर्शाया गया है कि महापुरुष (श्री रामकृष्ण) तथा उनके अनुयायी ही थे, जिन्होंने मिशन को साकार बनाया। रामकृष्ण ने इस मिशन के लिए आन्दोलन को प्रेरणा दी और उनके साथी व शिष्यों ने इसकी स्थापना की और इसकी शिक्षाओं का प्रचार किया।

श्री रामकृष्ण की मृत्यु 1886 में हुई, उन्होंने अपनी मृत्यु से पूर्व स्वामी विवेकानन्द को अपना उत्तराधिकारी घोषित कर दिया था। रामकृष्ण के जीवन काल में भक्ति प्रमुख अनुष्ठान रही थी। काली पूजा के साथ-साथ रामकृष्ण की पूजा को भी जोड़ दिया गया। इस तरह भक्त-गण, गुरू तथा काली दोनों के प्रति समर्पित थे। विवेकानन्द ने इसे पसन्द नहीं किया और उनके व अधिकांश शिष्यों के बीच मतभेद पैदा हो गये। जिन सिद्धान्तों पर विवेकानन्द ने अपने विश्वासों को आधारित किया, वे थे एकलवाद,

मठवाद, सार्वभौमिकतावाद, सहिष्णुता, उदारतावाद, मानवतावाद, प्रगति तथा वैज्ञानिक विश्व व्यापी दृष्टिकोण। विवेकानन्द का मानना था कि वेदान्त ही एकमात्र वैज्ञानिक धर्म है तथा यह विज्ञान के साथ पूरे तौर पर समकक्षता रखता है।

12.4 रामकृष्ण मिशन का सांगठनिक ढांचा (Organisational Structure of Ramakrishna Mission)

रामकृष्ण मिशन की विभिन्न गतिविधियों को संगठित तथा नियोजित करने के लिए व्यापक सांगठनिक ढांचा मौजूद है।

12.4.1 मठ और मिशन (Math and Mission)

आइये, अब हम इसकी व्याख्या करें। निम्नलिखित रेखाचित्र सांगठनिक ढांचे पर प्रकाश डालता है,

रेखाचित्र I

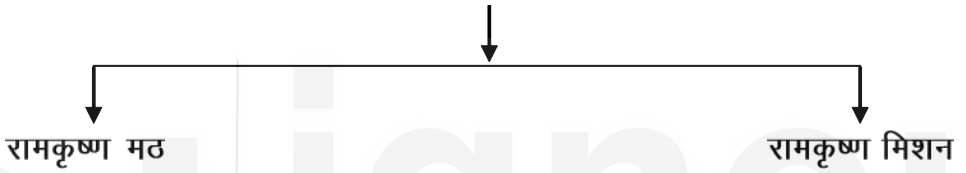

यह समझना जरूरी है कि रामकृष्ण मिशन तथा रामकृष्ण मठ निम्नलिखित ढंग से सन्निकट है;

i) दोनों का मुख्यालय कोलकाता में बेलूर मठ में स्थित है।

ii) मिशन की गवर्निंग बॉडी, मठ के ट्रस्टियों से मिलकर बनी है।

iii) मिशन का प्रशासनिक कार्य रामकृष्ण मठ के भिक्षुओं द्वारा संचालित किया जाता है। फिर भी रामकृष्ण मिशन तथा रामकृष्ण मठ दोनों का अपना अलग कानूनी अस्तित्व है तथा उनकी अपनी शाखाए हैं।

शायद आप यह जानना चाहेगे कि किस तरह से मिशन तथा मठ का पृथक अस्तित्व है। दरअसल मठ तथा मिशन निम्नलिखित तौर पर प्रथम अस्तित्व वाली संस्थाए हैं.

i) मठ का सगठन एक ट्रस्ट के अधीन स्थापित किया गया है, जिसके नियमो व प्रक्रियाओं को भली-भांति परिभाषित कर दिया गया है, मिशन एक पंजीकृत संस्था है।

ii) यद्यपि मठ तथा मिशन, दोनों ही सेवा एवं परोपकारवादी गतिविधिया करते हैं, फिर भी मठ धार्मिक पहलू तथा उपदेशों पर बल देता है, जबकि मिशन मुख्यतः अनेक तरह की कल्याणकारी सेवाओं के प्रति समर्पित है।

रेखाचित्र-II
मठ तथा मिशन की गतिविधियां
(धर्मार्थ एवं परोपकारवादी)

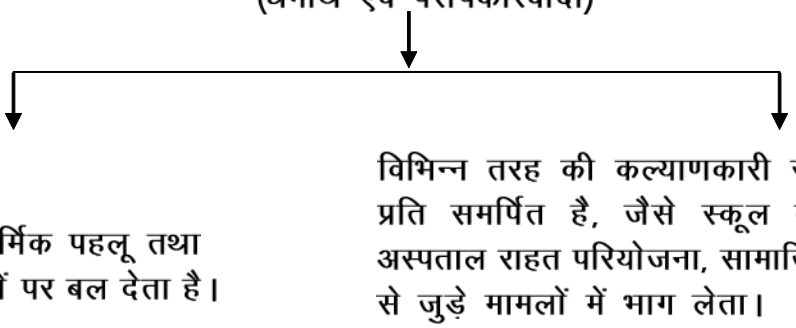

मठ तथा मिशन के बीच भेद करते हुए क्रिस्टोफर आइशरवुड ने बहुत सटीक ढंग से 'चिंतनशील मठ' तथा 'सामाजिक तौर पर सक्रिय मिशन' शब्दों का प्रयोग किया है। मह चितन के जरिये धर्म तथा उपदेश की तरफ झुका हुआ है, जबकि मिशन विभिन्न तरह की सामाजिक कल्याण की गतिविधियों की तरफ उन्मुख है।

इन मिशनों को उस रामकृष्ण मिशन के साथ जोड़ना नहीं है जिसका मुख्यालय बेलूर मठ में स्थित है। इन संगठनों की भी खासतौर पर बैरकपुर के रामकृष्ण विवेकानन्द मिशन की अनेक स्थानों पर शाखाएं मौजूद हैं तथा वे विभिन्न प्रकार की कल्याणकारी सेवाओं के लिए समर्पित हैं. खासतौर पर ये गरीब, शोषित लोगों, अनाथ बच्चों तथा दुखी स्त्रियों की सामान्य शिक्षा, अनौपचारिक शिक्षा. रोजगार उन्मुख प्रशिक्षण, ग्राम विकास कार्य, चिकित्सा सेवाओं आदि के क्षेत्र में जाति व धर्म से ऊपर उठकर धर्म की सेवा को तत्पर रहते हुए कार्य कर रहे हैं।

रामकृष्ण मठ तथा रामकृष्ण मिशन की भांति उन्होंने भी विवेकानन्द मठ तथा रामकृष्ण विवेकानन्द मिशन की स्थापना कर ली है और वे दोनों अटूट ढंग से परस्पर संबंधित हैं। विवेकानन्द मठ जहां आध्यात्मिक तैयारी का क्षेत्र उपलब्ध कराता है, वहीं रामकृष्ण विवेकानन्द मिशन ने जाति, वर्ण, धर्म तथा क्षेत्र का कोई भेदभाव किये बिना शोषित मानवता की निस्वार्थ सेवा के जरिये गुलामी से मुक्ति के लिए पृष्ठभूमि तैयार की है। रामकृष्ण विवेकानन्द मिशन एक पब्लिक चौरिटेबल संगठन है, जो कि नवम्बर, 1976 को पश्चिम बंगाल सोसाइटीज एक्ट, 1961 के अधीन पंजीकृत हुआ है। यह कानूनी तथा संवैधानिक तौर पर एक तरफ रामकृष्ण मठ तथा रामकृष्ण मिशन बेलूर के मुख्य संगठन से तथा दूसरी तरफ दक्षिणेश्वर स्थित शारदा मठ तथा रामकृष्ण शारदा मिशन से भिन्न है।

12.4.3 शासी निकाय (Governing Body)

रामकृष्ण मिशन जो कि 1860 के सोसाइयटी पंजीकरण अधिनियम. ग्ग्प के तहत 4 मई, 1909 को एक संघ के रूप में पंजीकृत हुआ था, उसका मुख्यालय बेलूर में था। बेलूर के मुख्यालय के संगठन के अलावा अब रामकृष्ण मिशन की करीब 112 शाखाएं समूचे विश्व में फैली हुई हैं, जैसे भारत, अर्जेन्टीना (दक्षिण अमेरिका), बंगलादेश, कनाडा, इंग्लैंड, फीजी. फ्रांस, जापान, मॉरीषस, सिंगापुर, श्रीलंका, स्विजरलैंड, संयुक्त राज्य अमेरिका में।

यह एक अंतर्राष्ट्रीय संगठन है जिसकी 31 मार्च, 1989 तक. 12 शाखाएं काम कर रही हैं। जिनमें 96 केन्द्र भारत में तथा 31 केन्द्र भारत के बाहर हैं। इन 112 शाखाओं में से 54 रामकृष्ण मिशन केन्द्र की हैं तथा 50 रामकृष्ण मठ केन्द्र व 23 मिशन व मठ दोनों के केन्द्र हैं।

भारत में, ये केन्द्र आंध्र प्रदेश, अरुणाचल प्रदेश, असम, बिहार, दिल्ली, गुजरात, हरियाणा, पंजाब, कर्नाटक, केरल, मध्य प्रदेश, महाराष्ट्र, मेघालय, उडीसा, राजस्थान, तमिलनाडु त्रिपुरा, उत्तर प्रदेश तथा पश्चिम बंगाल के सुदूर क्षेत्रों तक फैले हुए हैं।

अकेले पश्चिम बंगाल में ही डेढ़ दर्जन से अधिक केन्द्र मौजूद हैं। भारत के लगभग सभी महत्वपूर्ण महानमर जैसे हैदराबाद, बंगलौर, मुम्बई, मद्रास, कानपुर, कोलकाता, जयपुर, चंडीगढ़ इत्यादि में रामकृष्ण मिशन की शाखाएं हैं।

रामकृष्ण मिशन के व्यापक सांगठनिक ढांचे को समझने में एक चित्रांकित संगठन चार्ट आपकी मदद कर सकता है। यह आधुनिक काल में एक धार्मिक आन्दोलन के तौर परे रामकृष्ण मिशन के प्रभाव के बारे में भी आपको जानकारी देगा।

हम आशा करते हैं कि आप दोनों के बीच भेद के इस बिंदु का ध्यान रखेंगे, हालांकि लोग अक्सर रामकृष्ण मिशन को मठ की गतिविधियों के साथ भी संबद्ध कर देते हैं।।

आपके लिए उतना ही जरूरी है जितना कि इस बात को ध्यान में रखना है कि रामकृष्ण अथवा स्वामी विवेकानन्द के नाम पर चलने वाले किसी भी संस्थान का मतलब यह नहीं है कि वह भी रामकृष्ण मठ अथवा रामकृष्ण मिशन से संबद्ध हो जिनका मुख्यालय बेलूर मठ में हैं।

बोध प्रश्न 1

i) रामकृष्ण मठ तथा मिशन की स्थापना के पीछे तीन प्रमुख प्रेरणाएं क्या थीं?

क) .....

ख) .....

ग) .....

ii) रामकृष्ण मिशन के उद्देश्यों का उल्लेख कीजिये।

क) .....

ख) .....

ग) .....

घ) .....

12.4.2 रामकृष्ण विवेकानन्द मिशन

अन्य धार्मिक संगठनों की भांति ही आपको यह भी पता होना चाहिए कि रामकृष्ण मिशन में पृथकतावाद की एक नई आदत मौजूद है। मुख्य रामकृष्ण मिशन के भीतर कुछ सैद्धान्तिक मतभेदों के चलते, रामकृष्ण विवेकानन्द मिशन नामक एक गुट अलग होकर उभरा, जिसने उन विचारों पर प्रमुख ज़ोर दिया, जो कि स्वामी विवेकानन्द के निम्नलिखित शब्दों में निहित हैं-

''काश ! मैं बार-बार जन्म लूं और हजारों कष्टों का सामना करूं, यदि मैं अपने सपनों के उस एकमात्र ईश्वर की पूजा कर सकू, मेरा ईश्वर सताए हुए लोग और सभी प्रजातियों, सभी राष्ट्रों के गरीब लोग हैं।''

रामकृष्ण विवेकानन्द मिशन, जो कि मनुष्य के भीतर के ईश्वर की सेवा करो तथा 'श्रम ही पूजा है' के आदर्शों से प्रेरित था, एक पृथक संगठन के रूप में उभर कर आया और पश्चिम बंगाल सोसाइटीज एक्ट, 1961 के तहत पंजीकरण संख्या 5/18606 ऑफ 1976-1977 के साथ पंजीकृत हुआ। इसका मुख्यालय पश्चिम बंगाल के कोलकाता शहर में करीब 25 कि. मी. उत्तर तथा कोलकाता हवाई अड्डे के उत्तर-पश्चिम में करीब 24 कि.मी. की दूरी पर 7, रिवरसाइड रोड, बैरकपुर, 24-परगना, जिले में स्थित है। इसकी एक 14 सदस्यीय शासी निकाय बनाया गया जिसके संस्थापक स्वामी नित्यानंद बनाए गए। श्री रामकृष्ण तथा स्वामी विवेकानन्द के नामों को सामने रखते हए भारत तथा विदेशों में इस तरह के अनेक संस्थान काम कर रहे हैं।

रेखाचित्र III
रामकृष्ण मिशन की संगठनात्मक संरचना

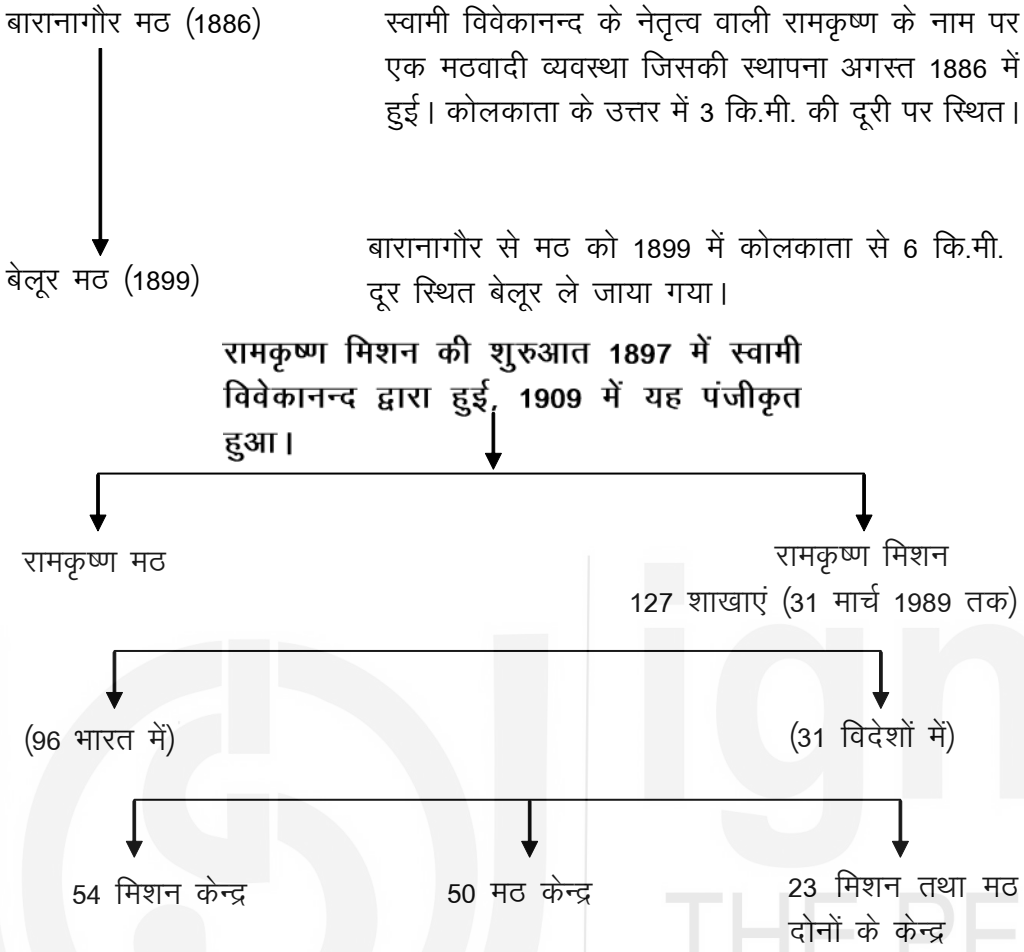

टिप्पणी: जैसा कि रेखाचित्र 3 में दर्शाया गया है, शुरू में बारानागौर मठ की स्थापना 1886 में हुई थी और उसके साथ स्वामी विवेकानन्द सहित श्री रामकृष्ण के शिष्यों द्वारा श्री रामकृष्ण का नाम उसमें जोड़ा गया था।

करीब एक वर्ष बाद यह बेलूर मठ में आ गया, जो कि कोलकाता से लगभग 6 कि.मी. दूर है। दूसरी तरफ रामकृष्ण मिशन 1897 में स्वामी विवेकानन्द द्वारा शुरू किया गया और 1909 में उसका पंजीकरण हुआ।

1989 तक रामकृष्ण मिशन तथा मठ की 127 शाखाएं हो गई थीं, जिनमें से 96 भारत में तथा 31 विदेशों में थी और इनमें से 54 मिशन केन्द्र, 50 मठ केन्द्र तथा 23 मिशन व मठ दोनों केन्द्र थे। यह जानकारी एक नजर में रेखाचित्र 3 में देखी जा सकती है।

12.5 वित्तीय सहायता एवं गतिविधियां (Financial Support and Activities)

सांगठनिक ढांचे पर चर्चा कर लेने के बाद, आपको यह भी जानना चाहिए. कि रामकृष्ण मिशन तथा रामकृष्ण मठ की विभिन्न सामाजिक कल्याणकारी गतिविधियों को वित्तीय सहायता कैसे प्राप्त होती है।

12.5.1 गतिविधियों को वित्तीय सहायता (Financing the Activities)

रामकृष्ण मिशन तथा रामकृष्ण मठ के अपने अलग कोश हैं तथा वे अलग-अलग खाते रखते हैं। उनके खातों की लेखापरीक्षा प्रशिक्षित लेखापरीक्षकों द्वारा की जाती है।

अपनी विभिन्न सामाजिक कल्याणकारी गतिविधियों को आयोजित करने के लिए रामकृष्ण मिशन तथा मठ दोनों को तीन स्रोतों से अनुदान सहायता प्राप्त होती है, वे हैं:

i) केन्द्र सरकार,

ii) राज्य सरकारें, तथा

iii) सार्वजनिक निकाय।

मठ की अन्य गतिविधियों को वित्तीय सहायता निम्न स्रोतों से प्राप्त होती है :

iv) भेंट, और

v) प्रकाशनों की बिक्री इत्यादि,

मिशन को निम्नलिखित स्रोतों से भी सहायता मिलती है;

vi) छात्रों से प्राप्त शुल्क; और

vii) सार्वजनिक चंदे, इत्यादि।

जैसा कि स्पष्ट देखा जा सकता है कि मिशन तथा मठ अपने वित्तीय साधनों के लिए पूरे तौर पर, केवल केन्द्र सरकार, राज्य सरकार तथा सार्वजनिक निकायों पर ही निर्भर नहीं हैं। वे आम व्यक्तियों से भी चंदा प्राप्त करते हैं, छात्रों से शुल्क प्राप्त करते हैं और प्रकाशनों की बिक्री के जरिये भी वित्त जुटाते हैं।

12.5.2 सामाजिक कल्याणकारी गतिविधियाँ (Social Welfare Activities)

हम आशा करते हैं कि आपको रामकृष्ण मिशन की समाज कल्याण सेवाओं से जुड़ी विभिन्न गतिविधियों के बारे में जानकारी होगी। आपमें से अनेक लोग, उनमें से कुछ के साथ जुड़े हुए भी हो सकते हैं। रामकृष्ण मठ तथा रामकृष्ण अपने पूजा, धार्मिक सेवाओं तथा धर्मोपदेशों के साथ अनेक आश्रम व मंदिरों का संचालन करते हैं। वे अनेक स्कूल, कालेज, पुस्तकालय, छात्रावास, सेवाश्रम (अस्पताल) जिनमें वार्डों की सुविधाएं मौजूद हैं, चिकित्सालय (क्लीनिक), औषद्यालय (डिस्पैन्सरी), विकलांगों के केन्द्र, आदि भी चला रहे हैं। स्वामी विवेकानन्द के उपदेशों पर आधारित, वेदान्त के सिद्धान्तों पर एक धार्मिक पुनरोत्थान पैदा करने के अलावा, रामकृष्ण आन्दोलन ने दलित उत्थान में एक महान योगदान किया है। आपमें से अधिकांश लोग शायद शिक्षा, अस्पताल चलाने तथा संकट की घड़ी में इसके द्वारा किये जाने वाले राहत कार्यों आदि जैसी सेवाओं से अच्छी तरह परिचित होंगे। यदि आप इस पर मोटे तौर पर विचार करें, तो आप पाएंगे कि रामकृष्ण मिशन की विभिन्न गतिविधियों को दो आम श्रेणियों में वर्गीकृत किया जा सकता है :

i) वे गतिविधियां जो कि विभिन्न तरह की धार्मिक सेवाओं से जुड़ी हैं, जैसे नियमित कार्यशाला, धर्मोपदेश इत्यादि; तथा

ii) वे गतिविधियाँ जो कि विभिन्न तरह की सामाजिक कल्याणकारी सेवाओं खासतौर से शिक्षा, स्वास्थ्य इत्यादि के क्षेत्र से जुड़ी हुई हैं।

शीघ्रता से याद कर लेने व समझ लेने के लिए, आप निम्नलिखित रेखाचित्र के जरिये इन विभिन्न प्रकार की गतिविधियों को भी चित्रित कर सकते हैं।

रेखाचित्र IV

(I)

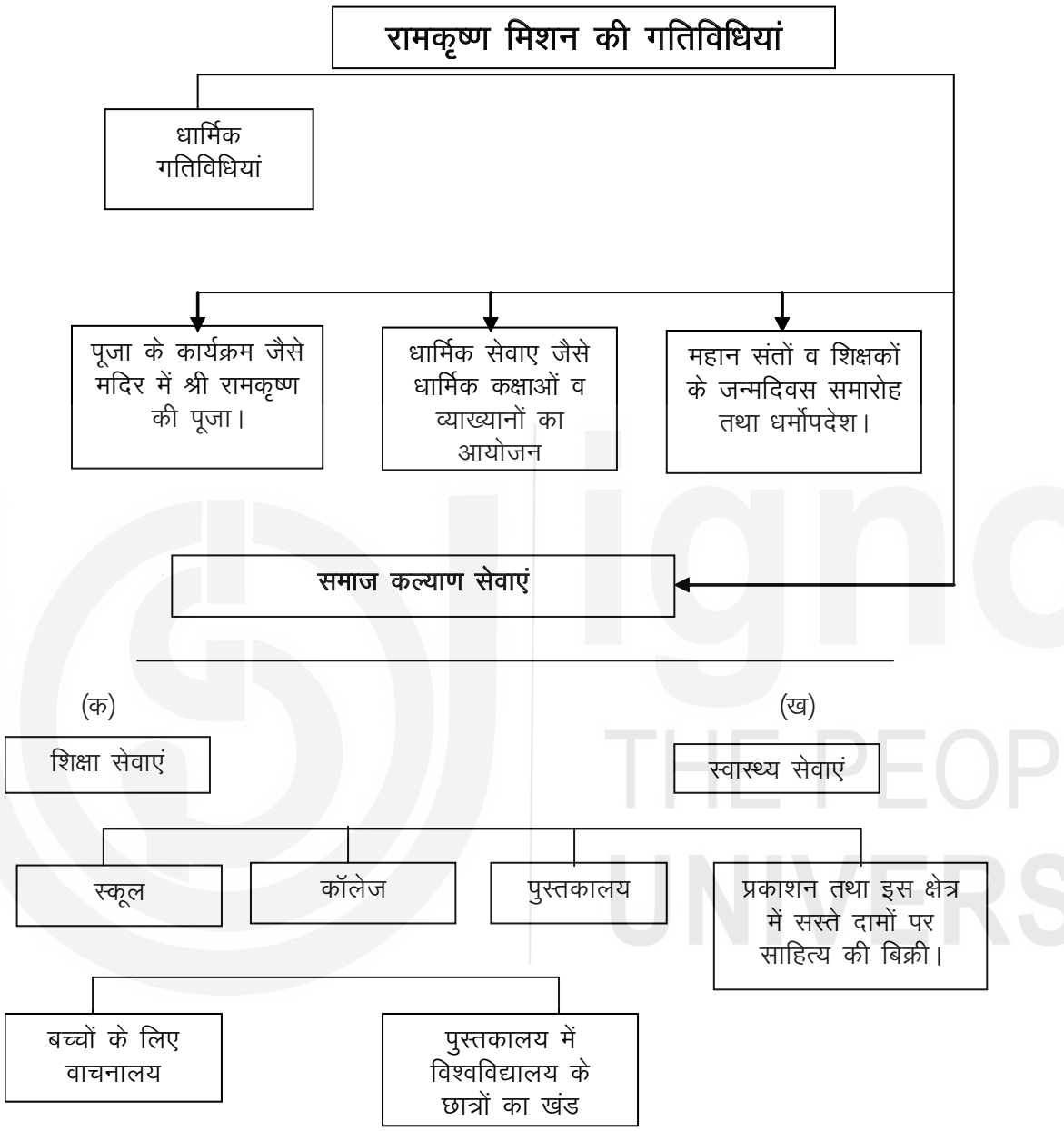

(III)

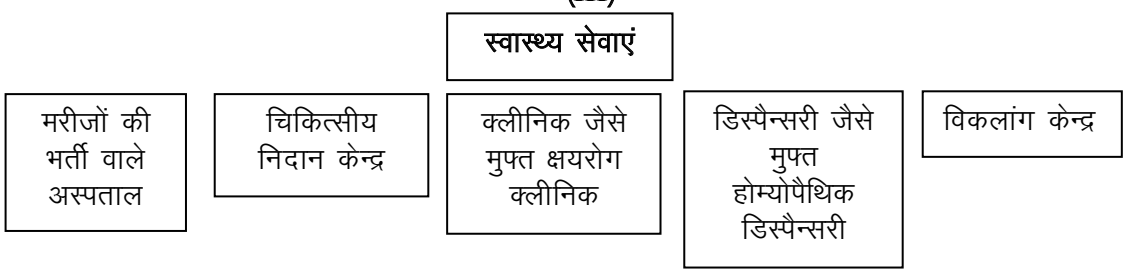

बोध प्रश्न 2

i) रामकृष्ण-विवेकानन्द मिशन पर पांच या सात पंक्तियों में लिखिए।

.....

.....

.....

.....

.....

ii) रामकृष्ण मिशन की कुछ गतिविधियों का उल्लेख कीजिए।

क) .....

ख) .....

ग) .....

घ) .....

च) .....

12.5.3 जनता की सहभागिता (Participation of People)

कोइ भी आन्दोलन केवल जनता की सहभागिता के जरिए ही स्वयं को कायम रख सकता है। रामकृष्ण मिशन वेदान्त के जीवन देने वाले विचारों तथा श्री रामकृष्ण एवं स्वामी विवेकानन्द के प्रेरणादायक संदेशों का नियमित उपदेश तथा समय-समय पर होने वाले भाषणों के जरिए प्रचार-प्रसार कर रहा है। जो कि महान शिक्षकों के जन्मदिन समारोहो, भजना. पूजा, एकादशी के दिन रामनाम सकीर्तन तथा हिन्दी में रामचरित मानस के साप्ताहिक पाठ, विवेक चौदमी पर बंगला में पाठ तथा कभी-कभी वेदान्त पर अंग्रेजी में चर्चा, के जरिए लोगों की आध्यात्मिक भावना को उत्प्रेरित करता है। सभी धार्मिक कार्यक्रमों में जीवन के विभिन्न क्षेत्रों से जुड़े लोग, विद्यार्थी, शिक्षक, सरकारी कर्मचारी, व्यापारी, राजनीतिज्ञ, डाक्टर, व्यावसायिक लोग तथा आम लोग, अमीर व गरीब सभी भाग लेते हैं। शिक्षा तथा स्वास्थ्य सेवाओं का लाभ सभी तरह के लोगों को मिलता है।

आइये, हम इनमें से कुछ सेवाओं के बारे में जानकारी प्राप्त करें :

क) क्षय रोग की महाविपत्ति का संगठित ढंग से मुकाबला करने के लिए, रामकृष्ण मिशन ने कुछ इलाकों में क्षयरोग का मुफ्त इलाज करने के लिए केन्द्र उपलब्ध कराये हैं जो कि अकेले गैर सरकारी संस्थान हैं। इन क्लीनिकों के निम्नलिखित कार्य हैं :

i) अलग-अलग केसों का रोग-निदान करना,

ii) क्लीनिक पर उपचार योग्य केस का उपचार करना;

iii) जिन केसों में लम्बे समय तक अस्पताल में भर्ती किये जाने की आवश्यकता हो अथवा विशेष शल्य उपचार की आवश्यकता हो, उन्हें अन्य अस्पतालों में भर्ती कराना।

iv) डोमिसिलियरी (Domiciliary) सर्विस स्कीम के तहत, भर्ती से पूर्व तथा अस्पताल से छुट्टी मिलने के बाद रोगियों का घर पर इलाज करना;

v) रोकथाम के उपाय के रूप में, रोगियों के संपर्क में आने वाले लोगों की जांच करना।

रामकष्ण मिशन द्वारा दिल्ली में चलाया जाने वाला क्षय रोग क्लीनिक, क्षय रोग के रोग निदान एवं उपचार की सभी सुविधाओं से लैस है। केन्द्रीय सरकार की स्वास्थ्य योजना के अन्तर्गत आने वाले लोगों को छोड़कर शेष सभी रोगियों को क्षय रोग रोकथाम दवाएं एटीबाइटिक्स, विटामिन आदि जैसी दवाएं मुफ्त में जाती हैं। क्लीनिक फिजीशियन, मेडिकल ऑफीसर, पैरामेडीकल स्टाफ, नर्सिंग स्टाफ, डिस्पैन्सर, लेबोरेटरी असिस्टैण्टों, आदि सभी से संपन्न हैं।

ख) डोमीसिलियरी सर्विस स्कीम में डोमीसिलियरी सर्विस यूनिट मौजूद है, जिसके कर्मचारीगण दिल्ली नगर निगम द्वारा क्षयरोग नियंत्रण के उनके कार्यक्रम को आगे बढाने के लिए प्रतिनियुक्ति (डेपुटेशन) पर भेजे गए हैं। इस योजना के तहत, रोगी तथा संस्थान के बाच एक घनिष्ठ संपर्क स्थापित किया जाता है जिसमें रोगियों व उनके सपर्क में आने वाले लोगों को रोगी से अलग रखने तथा संक्रमण से बचाने जैसे मसलों पर घर जाकर सलाह दी जाती है, तथा आवश्यक जाच सलाह व उपचार के लिए, यदि आवश्यक हो, तो उन्हें क्लीनिक पर भी लाया जाता है।

ग) मिशन की भावना तथा उद्देश्यों को आगे बढ़ाते हुए, मेडिकल डाइग्नोस्टिक सेन्टर, खासतौर पर गरीब और जरूरतमंद समुदायों को सेवाएं प्रदान करता है।

घ) क्लीनिकल विंग पोलीक्लीनिक की शक्ल में है, जो कि अनेक प्रकार की सुविधाएं एवं स्वास्थ्य सेवाए प्रदान करता है।

च) रामकृष्ण मिशन द्वारा संचालित मुफ्त होम्योपैथिक डिस्पैन्सरी, खासतौर से, आसपास के गरीब तबकों के लोगों की सेवा करती है।

छ) विशेष शिक्षा सेवाए : रामकृष्ण मिशन द्वारा दिल्ली में अपनी इमारत के भीतर उपलब्ध कराये गए मुफ्त पुस्तकालय तथा वाचनालयों की सुविधाओं का लाभ प्रत्येक वर्ष सैकडों, हजारों लोग उठाते हैं। पुस्तकालय में पढते, पुस्तकें घर ले जाने और बच्चों के लिए पढ़ने की अलग जगहें बनी हुई हैं और वाचनालय तथा पृथक लैण्डिंग सेक्शन तथा बच्चों जिसका लोग उपयोग करते हैं। रामकृष्ण मिशन द्वारा दिल्ली में अपनी इमारत के भीतर, दिल्ली विश्वविद्यालय की मदद से विश्वविद्यालय छात्रों का खड-पुस्तकालय भी चलाया जाता है, जिसका उपयोग इसकी सदस्यता ग्रहण करने के बाद केवल दिल्ली विश्वविद्यालय के छात्र ही कर सकते हैं।

12.5.4 सांस्कृतिक गतिविधियाँ (Cultural Activities)

रामकृष्ण मिशन नियमित उपदेशों तथा धर्मग्रंथों की व्याख्या तथा अन्य विविध विषयों पर विचार-विमर्श आयोजित कराता है। मठ तथा मिशन के सन्यासी तथा सार्वजनिक जीवन के महत्वपूर्ण लोग इनका संचालन करते हैं। उपदेश हिन्दी में श्री रामकृष्ण कथामृत, श्री रामचरित मानस पर कक्षाएं, बंगला में श्री रामकृष्ण कथामत, श्री रामकृष्ण लीला प्रसंग पर, तथा अंग्रेजी में श्री रामकृष्ण के वचनों, भगवद् गीता, विवेक चौदमी तथा पातांजल योग सूत्र पर आयोजित किये जाते हैं।

12.6 जन्मदिन समारोह (Birthday Celebration)

मिशन द्वारा प्रदान की जाने वाली विभिन्न सामाजिक कल्याणकारी सेवाओं पर विचार करते समय, आपको यह ज्ञात होना चाहिए कि त्रिदेव की एक बुनियादी अवधारणा ही है जो कि रामकृष्ण मिशन के समूचे दर्शन तथा गतिविधियों का मार्गदर्शन करती है।

12.6.1 त्रिदेव की अवधारणा (Concept of Trinity)

i) श्री रामकृष्ण	शिक्षक, गुरू, मार्गदर्शक	जो कि एक पिता के रूप में नेतृत्व करके रास्ता दिखाते थे।
ii) श्री शारदा देवी	पवित्र माता	मातृत्व दैवीय शुद्धता सौभाग्य, षाष्वत प्रेम की प्रतीक तथा दैवीय ऊर्जा का स्रोत।
iii) स्वामी विवेकानन्द	शिष्य आत्मा प्रेरित	विश्व बधुत्व के संदेश के जरिये प्रेम सेवा के अग्रदूत के प्रतीक

त्रिदेव दैवीय शक्तियों तथा मानव के निकटतम प्रतीक हैं। इन तीन महान हस्तियों ने रामकृष्ण मिशन नामक इस आधुनिक धार्मिक आन्दोलन की भावना एवं उद्देश्यों को प्रेरणा दी। श्री रामकृष्ण ने एक गुरू के रूप में, श्री शारदा देवी ने एक प्रेरक (पवित्र माता) के अनुयायियों-नेताओं एवं समर्थकों के साथ रामकृष्ण मिशन के नेतृत्व में एक आधुनिक धार्मिक आन्दोलन की धाराओं के जरिये देवत्व, मानवता एवं सेवा का स्तभदीप प्रज्जवलित किया। इन महान हस्तियों के जन्मदिन समारोह, रामकृष्ण मिशन के धार्मिक तंत्र में महत्वपूर्ण अवसर हैं। यह एक ऐसी परंपरा है जो कि पीढ़ी-दर-पीढ़ी चली आ रही है और देवत्व, मानवता एवं सेवा के आदर्शों को प्रेरित करती रही है।

12.6.2 श्री रामकृष्ण जन्मदिन समारोह (Birthday Celebration of Sri Ramakrishna)

श्री रामकृष्ण का 156वां जन्मदिन समारोह, 27 फरवरी, 1991 को मनाया गया था। उनका जन्म, बगाल में हुगली जिले में, एक दूरदराज के कामरपुकुर नामक गांव में, 18 फरवरी, 1836 को, सुबह के समय हुआ था। इस दिन बहुत सारी कार्यशालाए प्रार्थना सभाएं एवं समारोह होते हैं। उनका नाम श्री गदाधर चट्टोपाध्याय रखा गया था। बचपन से ही उन्होंने अनेक अवसरों पर अपने विचारों एवं गतिविधियों में दैवीय प्रेरणा के स्पष्ट प्रभाव प्रस्तुत किये थे। उनके भक्तों पर इनका तथा उनके आशीर्वादों का भारी असर पड़ा। उनके भीतर एक तीव्र इच्छा यह जानने की थी कि क्या दैवीय शक्तियां वास्तव में मौजूद होती हैं और इस जगत की प्रत्येक चीज के जरिये स्वय को अभिव्यक्त करती हैं। उन्होंने तपस्या की और अन्ततः इस बात का एहसास किया कि ईश्वर का अस्तित्व है। जन्मदिन की पूजा खासतौर पर शुभ मानी जाती है। उन्होंने अपने जीवन में विभिन्न अवस्थाओं में भिन्न-भिन्न धार्मिक विश्वासों के निर्देशों का पालन किया और यह एहसास किया कि सभी धर्म अलग-अलग रास्तों से होते हुए, एक ही मंजिल अर्थात ईश्वर तक पहुंचने का साधन मात्र हैं। रामकृष्ण का जन्मदिन भक्तों के बीच पवित्रता एवं कल्याणकारिता पैदा करता है।

12.6.3 श्री शारदा देवी जन्मदिन समारोह (Birthday Celebration of Shri Sarada Devi)

पवित्र माता श्री शारदा देवी का 139वां जन्मदिन समारोह दिसम्बर, 1991 में मनाया गया था। उनके जन्मदिन समारोह भक्तों को शक्ति प्रदान करते हैं। उनका जन्म 22 दिसम्बर, 1853 को पश्चिम बंगाल में बांकुरा जिले के एक दूरदराज वाले गांव जेराम्बटी में हुआ था। श्री शारदा देवी नारी का एक आदर्श रूप हैं, जिन्होंने जीवन पर्यन्त अपने पति की सेवा की नया अपने पति की विद्वता के प्रति समर्पित रहते हुए, सांसारिक सुखों का त्याग कर दिया। जन्मदिवस पर श्रद्धालुओं की बीच खुशी की लहर दौड़ जाती है। श्री रामकृष्ण के साथ

उनका विवाह 6 वर्ष की छोटी उम्र में ही हो गया था और वे आगे चलकर रामकृष्ण मिशन जैसे महान संगठन की स्थापना करने व उसे चलाने में स्वामी विवेकानन्द एवं श्री रामकृष्ण के अन्य युवा शिष्यों की प्रेरणा का स्रोत बनी। उनकी शिक्षाओं का सार इन पक्तियों में है.

- "यदि आप जीवन में खुश रहना चाहते हैं तो अन्य लोगों के भीतर कमियाँ दूढना बन्द कर दीजिए।''
- ''आप जो भी करें और जहा भी जाए यह बात याद रखिए कि स्वर्ग में बैठा पिता, यानि ईश्वर हमेशा आपकी रक्षा करता है।''

12.6.4 Lokeh foosdkuUn dk tUe lekjksg ½Birthday Celebration of Swami Vivekananda)

शायद आपको मालूम होगा कि स्वामी विवेकानन्द के 128वें जन्मदिन समारोह को राष्ट्रीय युवा दिवस के रूप में मनाया गया था। स्वामी विवेकानन्द, श्री रामकृष्ण के सबसे प्रमुख शिष्य एवं सूत्रधार वेदान्त के संदेश के अग्रदूत पूरब और पश्चिम के बीच संपर्क के पथ प्रदर्शक नयी मठवादी व्यवस्था के संस्थापक थे।

वे आधुनिक धार्मिक आन्दोलन, रामकृष्ण मिशन के शीर्षस्थ नेता थे। उनका जन्म 12 जनवरी, 1863 को कोलकाता में हुआ था। 1881 में उन्हें पहली बार देखकर ही, श्री रामकृष्ण ने उनके भीतर छिपे आध्यात्मिक विद्वान को पहचान लिया था। 1893 में विश्व धार्मिक सम्मेलन के अवसर पर शिकागो में दिए गए उनके ऐतिहासिक भाषण के चलते वे बहुत अधिक प्रसिद्ध हो गये। उन्होंने अपने जीवन को पीड़ित मानवता की सेवा में समर्पित किया और जीवन पर्यंत उन्होंने मनुष्य की गरिमा को ऊंचा उठाने का प्रयास किया। उन्होंने खूबसूरती के साथ भक्ति के आदर्शों का वेदान्त के ज्ञान के साथ समन्वय किया। विवेकानन्द जन्मदिन समारोहों के दौरान भक्तों ने उसी तरह समर्पण तथा प्रेम की शक्ति का अनुभव किया, जिस तरह से विवेकानन्द ने श्री रामकृष्ण के सानिध्य में महसूस किया था। सेवा के उनके आदर्श निम्नलिखित वक्तव्यों में मौजूद हैं :

''आप ईश्वर के पवित्र चरणों में हजारों टन फल एवं फलों की भेंट चढ़ाने की तुलना में उसकी सेवा, उसके बच्चों की सेवा करके कहीं अधिक अच्छी तरह कर सकते हैं।"

"वह जो कि प्राणी मात्र से प्रेम करता है, वही ईश्वर की अच्छी पूजा करता है।"

-(संकलित रचनाए. खड 4, पृष्ठ 496)

वह पूरब एवं पश्चिम के बीच सबधों के एक नये अध्याय के पथ-प्रदर्शक थे। यह सबध मुक्त आदान-प्रदान एवं पारस्परिक सहयोग पर आधारित हो सकता है। पश्चिम को अपने वैज्ञानिक एवं तकनीकी विकास, अति संपन्नता एवं भौतिक विपुलता के साथ पूरब की गरीब, दबी कुचली, पीडित मानवता की मदद एवं सहयोग करने के लिए आगे आना चाहिए। ताकि वे इस दारूण-दरिद्रता की अवस्था से बाहर निकल सकें और इसके बदले में पूर्व को अपने प्राचीन वेदान्तिक बुद्धि एवं ज्ञान के जरिए पश्चिम को आध्यात्मिक शान्ति एवं मार्ग-दर्शन प्रदान करना चाहिए। पूर्व की तकलीफें गरीबों से पैदा हई हैं, जबकि पश्चिम की मुसीबतें संपन्नता से पैदा हुई हैं. इसलिए उन्हें एक साथ आगे बढ़ना चाहिए तथा पीडित मानवता की सहायता करनी चाहिए। जहा एक तरफ गरीबी ही दुखों का कारण है, वहीं दूसरी तरफ अमीरी भी दुखों का कारण है।

ignou THE PEOPLE'S UNIVERSITY

12.6.5 जन्मदिन समारोह किस तरह से मनाये जाते हैं? (How is the Birthday Celebrated?)

आप सभी यह जानते हैं कि भारत में जन्मदिन मनाने के अनोखे तरीके हैं। महान हस्तियों के जन्मदिन के दौरान और भी चार चांद लग जाते हैं। ये जन्मदिन समारोह रामकृष्ण मिशन के परिसर तथा उसके बाहर भी अनेक सार्वजनिक स्थलों एवं संस्थाओं में मनाये जाते हैं।

इन समारोहों के दो पहलू हैं:

i) सामाजिक-धार्मिक; तथा

ii) सामाजिक सेवाएं।

समाज सेवा समारोह का धार्मिक अवयव प्रायः निम्न गतिविधियों से जुड़ा रहता है:

i) जन्म तिथि पूजा;

ii) मंगल आरती;

iii) समाधि;

iv) वैदिक उच्चारण;

v) इन महान लोगों के जीवन के उद्धरणों का पाठ;

vi) भजन

vii) विशेष पूजा एवं हवन।

इसमें सन्यासी अनुयायी, शिष्य एवं अन्य लोग भी भाग लेते हैं। इन समारोहों के सामाजिक घटक में निम्नलिखित बातें शामिल हैं:

i) सार्वजनिक सभाएं;

ii) कुष्ठ रोगियों की सेवा के कार्यक्रम जो कि नारायण सेवा कहलाते है;

iii) भोजन, कपड़े इत्यादि का वितरण करके, गरीबों व बेसहारा लोगों की सेवा के कार्यक्रम;

iv) स्कूलों व कालेजो में विभिन्न तरह की प्रतियोगिताए खासतौर से राष्ट्रीय युवा दिवस के रूप में मनाये जाने वाले स्वामी विवेकानन्द के जन्मदिन समारोह के अवसर पर किए जाने वाले कार्यक्रम।

भारत सरकार का मानव संसाधन विकास मंत्रालय अक्सर रामकष्ण मिशन द्वारा आयोजित इन समारोहों के व्यय को वहन करने के लिए अनुदान के रूप में फंड प्रदान करता है।

उदाहरण के लिए. शायद आप यह जानना चाहेगे कि 1989-90 के दौरान भारत सरकार के मानव संसाधन मंत्रालय द्वारा स्वामी विवेकानन्द की 125वीं वर्षगाठ के सिलसिले में हुए व्यय का वहन करने के लिए रु 48.000 का अनुदान दिया था।

12.7 रामकृष्ण मिशन की अन्य गतिविधियाँ (Other Activities of Ramakrishna)

आइए अब कुछ अन्य गतिविधियों और समारोहों पर ध्यान केंद्रित करें।

12.7.1 अन्य समारोह (Other Celebrations)

आपको यह भी मालूम होना चाहिए कि रामकृष्ण मिशन अन्य अनेक समारोहो का आयोजन करता है, जैसेः

i) गुरू पूर्णिमा;

ii) श्री कृष्ण जन्माष्टमी;

iii) श्री दुर्गा अष्टमी;

iv) श्री काली पूजा;

v) महाशिवरात्रि;

vi) क्रिसमस, इत्यादि।

इनके दौरान भक्ति भाव से विशेष पूजा, भजन तथा धर्मग्रथों का पाठ किया जाता है।

12.7.2 भक्त सम्मेलन (Bhakta Sammelan)

एक आधुनिक धार्मिक आन्दोलन के रूप में रामकृष्ण मिशन का अध्ययन करते समय, आपके लिए यह जानना दिलचस्प होगा कि कभी-कभी मिशन भक्त सम्मेलन जैसे धार्मिक सम्मेलन आयोजित करता है। उदाहरण के लिए. इस तरह का एक सम्मेलन 31 दिसम्बर 1989 को दिल्ली में रामकृष्ण मिशन के परिसर में आयोजित किया गया, जिसमें 336 प्रतिनिधियों ने भाग लिया था।

एक धार्मिक कृत्य होने के अलावा इस तरह के सम्मेलन सन्यासियों एवं गृहस्थों को एक साथ मिलकर आध्यात्मिक अनुशासन का पालन करने का अवसर प्रदान करते हैं, जिसका प्रतिबिंब ताकि रामकृष्ण आन्दोलन पर दिखाई दे तथा आन्दोलन की सही दिशा में प्रगति के लिए. इसे स्थायित्व एवं शक्ति प्रदान करें। फूट का शिकार हुए इस युग के लिए एक आध्यात्मिक शक्ति के स्रोत के रूप में तथा पीडित मानवता. दबे-कुचले, बेसहारा कुष्ठ रोग का शिकार बेसहारा महिलाओं व बच्चों, दगों का शिकार हुए तथा प्राकृतिक आपदाओं से त्रस्त लोगों की सेवा के एक साधन के रूप में, आन्दोलन को जारी रखने के लिए गृहस्थ भक्तों की भूमिका खासतौर पर महत्वपूर्ण है। यदि यह भारत में व्यापक सामाजिक, व्यावसायिक एवं सांगठनिक जीवनमूल्यों को बरकरार रखने में सहायक सिद्ध हो सके तो हमारी बहुत सारी समस्याओं का समाधान हो सकता है। आधुनिक युग के एक धार्मिक आन्दोलन के रूप में, रामकृष्ण मिशन के समक्ष गरीबी, अशिक्षा, बीमारी, अस्वस्थता, अज्ञान तथा भ्रष्टाचार की चुनौतियां राष्ट्रीय स्तर पर मौजूद हैं, जिनके करोड़ों लोग शिकार हैं। विश्व स्तर पर युद्ध के अक्सर सिर पर मडराने वाले खतरे, पर्यावरण की बिगडती हालत, भौतिकवाद की सत्ता की बढ़ती हवस तथा पीडित मानवता की शान्ति भंग हो जाना आदि चुनौतिया मौजूद हैं।

12.7.3 मिशन के समक्ष मौजूद चुनौतियां)

वास्तविक चुनौती इस बात में निहित है कि स्वामी विवेकानन्द द्वारा स्थापित रामकृष्ण मिशन के जरिये शुरू किया गया आधुनिक धार्मिक आन्दोलन किस तरह से वेदान्त की बुद्धि एवं ज्ञान के जरिये देवत्व, मानवता तथा सेवा के मूल्यों का पुनर्जागरण एवं पुनरुत्थान करके पीडित मानवता के सम्मुख मौजूद संकट का सामना करता है,

कथोपनिशद् में कहा गया है.

''उत्थिष्ठत, जगत प्रत्याः वारानिरोधक'' इसका तात्पर्य यह है : उठो जागो, उपलब्धि हासिल करो, यह कि महान व्यक्ति के पवित्र चरणों में ऐसी सूझबूझ जो कि पूरब एवं पश्चिम की भौतिक एवं आध्यात्मिक तकलीफों को दूर करके अर्पित करें, पीड़ित मानवता की सेवा के जरिये मनुष्य के भीतर देवत्व की पुनः स्थापना करें।

यह उपदेशों से ज्यादा अमल से जुड़ा हुआ प्रश्न है। एक धार्मिक आन्दोलन के रूप में रामकृष्ण मिशन ने उपदेशों एवं अमल को काफी हद तक आपस में मिलाने का काम किया है। विभिन्न धर्म एक ही देवत्व की प्राप्ति के अलग मार्ग हैं तथा देवत्व मानवता की सेवा के जरिए ही अधिक गौरवशाली बनता है।

12.8 आधुनिक आन्दोलन के रूप में रामकृष्ण मिशन (Ramakrishna Mission As a Modern Movement)

अंत में, अब हम अपने विश्लेषण के एक महत्वपूर्ण पहलू पर विचार करेंगे और वह यह कि रामकृष्ण आन्दोलन, स्वयं को एक आधुनिक धार्मिक आन्दोलन कहे जाने की अभिलाशा क्यों रखता है। आइये, हम देखें कि यह किस तरह से एक वास्तविकता बन गई है।

12.8.1 मिशन का इतिहास (History of the Mission)

इस प्रश्न की जाँच करते समय आपको निम्नलिखित बिन्दुओं को ध्यान में रखना चाहिएः

i) पहला यह कि रामकृष्ण मिशन का इतिहास इस शताब्दी तथा पिछली शताब्दी के अंतिम 25 वर्षों के बीच तक ही सीमित है, और यह अभी 100 वर्ष पुराना भी नहीं हुआ है।

ii) इतने कम समय के भीतर ही मिशन ने विश्वभर में दूर-दूर तक अपनी शाखाए फैला ली है, तथा विश्व की भौतिक एवं आध्यात्मिक रूप से पीडित मानवता को एक बड़े हिस्से में समेट लिया है।

iii) धार्मिक जगत में इसने अपने इस दृष्टिकोण के जरिये कि सभी धर्म एक ही दैवीय शक्ति, एक ही ईश्वर तक ले जाते हैं. पूजा एवं विश्वास के क्षेत्र में एक नवजागरण पदा कर दिया है। ईश्वर मनुष्य के भीतर निवास करता है और मनुष्य को पीड़ित मानवता की सेवा के जरिये ईश्वर को प्राप्त करने की कोशिश करनी चाहिए। ये पीड़ाएं शारीरिक-भौतिक तथा गैर-शारीरिक-भावनात्मक -मानसिक- आध्यात्मिक हैं। ये पीडाएं जाति, रंग, प्रजाति, धर्म, क्षेत्र तथा जातीयता के संकीर्ण दायरों से ऊपर रहकर समूची मानवता को प्रभावित कर रही हैं। एक आन्दोलन के रूप में रामकृष्ण मिशन आशा की एक किरण उपलब्ध कराने की ओर अग्रसर है।

iv) रामकृष्ण मिशन ने गरीब, दबे-कुचले, बेसहारा लोगों, औरतों व बच्चों, जिन्हें मदद की आवश्यकता है तथा प्राकृतिक आपदाओं से त्रस्त हए लोगों की सामाजिक सेवा से जुडी अनेक गतिविधियों को अपनाया है।

v) राष्ट्रीय स्तर पर शिक्षा, स्वास्थ्य इत्यादि के क्षेत्र में सेवाउन्मुख गतिविधियों के कार्यक्रमों के जरिये, रामकृष्ण मिशन अपनी आध्यात्मिक शक्ति तथा देवत्व सेवा एवं मानवता में अपने विश्वास के माध्यम से विभिन्न लोगों व समूहों को एकजुट करने का प्रयास कर रहा है।

vi) अंतरराष्ट्रीय स्तर पर, मिशन आध्यात्मिक शक्ति, पीड़ित मानवता की सेवा, शान्ति के संदेश तथा सभी तबकों की सेवा, चाहे उनकी जाति, प्रजाति, धर्म एवं क्षेत्र कोई भी क्यों न हो आदि के माध्यम से बहुराष्ट्रीय एवं बहुधर्मी समुदायों को एक साथ मिलाने की चेष्टा कर रहा है।

vii) रामकृष्ण मिशन के पास मुख्यालय के स्तर से क्षेत्रीय एवं स्थानीय स्तरों तक फैला मठ तथा मिशन, दोनों द्वारा पोषित एक सुगठित ढांचा मौजूद है। यह ऐसे आदर्शों, विचारधारा, उद्देश्य व ध्येय से संपन्न है जो कि देवत्व एवं मानवता की सेवा से प्रेरित हैं। यह ऐसी गतिविधियों द्वारा समर्पित है जो कि शारीरिक-भौतिक तथा धार्मिक आध्यात्मिक पहलुओं से संबद्ध है। साथ ही त्रिदेव की शक्ति निम्नलिखित से मिलकर बनी है:

- श्री रामकृष्ण : गुरू;
- श्री शारदा देवी : पवित्र माता, प्रेरणा स्रोत;
- स्वामी विवेकानन्द : संस्थापक, मानवतावादी तथा वैदिक बुद्धिमत्ता से प्रेरित

12.8.2 वर्तमान स्थिति (The Present Position)

रामकृष्ण आन्दोलन आज भी एक ऐसा आन्दोलन है जिसका नेतृत्व संन्यासियों वाला, इसका दल करता है और जिसे सभी धर्मों व क्षेत्रों के इसके गृहस्थ शिष्यों व अनुयायियों का समर्थन प्राप्त है।

काम करने का तरीका तथा पूजा करने की रीति इसे प्रेरणा व जीवन-शक्ति से ओत-प्रोत रखती है।

श्री रामकृष्ण को भक्ति तथा त्याग से प्रेरणा मिली थी। त्याग के बिना कोई महान काम नहीं हो सकता । त्याग की वह भावना जो कि स्वामी ब्रम्हानन्द (राखाल) बलराम, सुन्दर महेन्द्र तथा चुन्नी इत्यादि (जो सभी इस व्यवस्था के संन्यासी बन गये थे) की युवा आत्माओं में मौजूद रही थी. आज पीड़ित मानवता के समक्ष मौजद भौतिक एवं आध्यात्मिक संकट की वर्तमान घडी में रामकृष्ण मिशन के संन्यासियों, भक्तों एवं अनुयायियों के भीतर भी जारी रहनी चाहिए।

त्याग की वह भावना जिसने रामकृष्ण के हृदय को प्रदीप्त किया था, बलिदान की वह भावना जो कि स्वामी विवेकानन्द तथा उनके सहयोगी युवा सन्यासियों के मस्तिष्क में शुरू से ही निहित थी. दैवीय सदाचार जिसने श्री शारदा देवी को रोशनी दी. उन पुरुषों व स्त्रियों के मस्तिष्क में भी यही भावना जारी रहनी चाहिए जो कि रामकृष्ण मिशन के अधीन, इस धार्मिक आन्दोलन में शरीक हुए हैं। उम्मीद है कि एक शताब्दी पहले परमहस श्री रामकृष्ण द्वारा प्रज्वलित किया गया और यह दीप, सदैव मनुष्यों को सही रास्ता दिखाता रहेगा।

12.9 सारांश

इस इकाई की शुरुआत हमने श्री रामकृष्ण, श्री शारदा देवी एवं स्वामी विवेकानन्द की प्रेरणा से, रामकृष्ण मिशन एवं मठ की शुरुआत को परिलक्षित करते हुए की थी। इसके बाद हमने मिशन की विचारधारा, इसके उद्देश्यों व गतिविधियों पर चर्चा की। फिर हमने मठ, मिशन तथा शासी निकाय के सांगठनिक ढांचे की व्याख्या की। इसके अंतर्गत सामाजिक कल्याण एवं सांस्कृतिक गतिविधियों को आर्थिक सहायता उपलब्ध कराना शामिल है। इस तरह हमने इस विषय पर पर्याप्त चर्चा की है।

12.11 संदर्भ

इन्दिरा गांधी राष्ट्रीय मुक्त विश्वविद्यालप पाठ्यसामग्री (2005), *समाज और धर्म* (ESO-15), नई दिल्ली : इग्नू

स्वामी गंभीरानन्द; 1957; *हिस्ट्री ऑफ द रामकृष्ण मठ एंड मिशन* (क्रिस्टोफर आइष्वुड द्वारा एक आमुख सहित) अद्वैत आश्रम, कोलकाता।

रामकृष्ण मिशन, 1990; *रामकृष्ण मिशन*, नई दिल्ली।

जॉन येल; 1961; *ए यकी एंड द स्वामीज*, जार्ज औलन एंड अनविन लि., लंदन।

गोस्पल ऑफ श्री रामकृष्ण; स्वामी निखिलानन्द द्वारा अनूदित तथा एल्डोस हक्सले द्वारा आमुख सहित (दो खंडों में) रामकृष्ण मठ, कोलकाता।

12.12 बोध प्रश्नों के उत्तर

बोध प्रश्न 1

i) क) श्री रामकृष्ण

ख) श्री शारदा देवी

ग) स्वामी विवेकानन्द

ii) क) आत्मा की मुक्ति, मानवता की सेवा।

ख) सनातन धर्म की शिक्षाए एवं प्रचलन जिन्हें श्री रामकृष्ण श्री शारदा देवी एवं स्वामी विवेकानन्द की जीवनियों ने चरितार्थ किया।

ग) त्याग, सेवा तथा सभी धर्मों के बीच सदभाव की दिशा पर बल दिया जाना चाहिए।

घ) श्रम तथा पूजा को एक समान मानना और अत्यधिक गभीरता से किया जाना चाहिए।

बोध प्रश्न 2

i) रामकृष्ण-विवेकानन्द मिशन, रामकृष्ण मिशन के मुख्य संगठन से अनेक गुटों के अलग हो जाने के फलस्वरूप स्थापित हुआ था। इसने स्वामी विवेकानन्द की सभी प्रजातियों व राष्ट्रों के गरीब लोगों के यहा बार-बार जन्म लेने की इच्छा पर बल दिया। यह मिशन 1961 में स्थापित हुआ जबकि इसका पजीकरण हुआ और इसका मुख्यालय कोलकाता शहर से 25 कि मी. उत्तर में स्थित बैरकपुर में बनाया गया।

ii) क) पूजा, धार्मिक सेवाए, महान सतों के जन्मदिन पर उपदेश एवं समारोह आदि जैसी धार्मिक गतिविधिया।

ख) शिक्षा एवं स्वास्थ्य सेवाओं जैसी समाज कल्याणकारी सेवाएं जैसे अस्पताल क्लीनिक रोग-निदान केन्द्र डिस्पैन्सरिया तथा विकलाग केन्द्र।

शब्दावली

औद्योगिक क्रांति : इस शब्द का तात्पर्य 1750-1850 की अवधि में आर्थिक क्षेत्र में आने वाले आमूल परिवर्तनों से है। इंग्लैंड इस क्रांति का केंद्र था, इसके बाद यह संपूर्ण यूरोप में फेल गई। भाप शक्ति जैसी नई खोजों, पावरलूम, कलाई मशीन आदि जैसे आविश्कारों ने उत्पादन के क्षेत्र में क्रांति ला दी। इसी अवधि के दौरान कारखाना प्रणाली तथा पूंजीवाद का उदय हुआ।

अभिज्ञान (Identification) : ऐसे संस्कार जो व्यक्ति को एक नई पहचान देते हैं, जैसे कान छेदना।

अवतार (Incarnation) : इसका अर्थ है किसी आध्यात्मिक धारणा का ठोस या साक्षात स्वरूप। माना जाता है कि विष्णु के दस अवतार थे जिनमें से प्रत्येक सामाजिक संकंट की घड़ी में प्रकट हुए। कृष्ण इन अवतारों में से एक थे। वारह, मोहिनी, परषुराम, भी इन अवतारों में शामिल हैं।

अद्वैतवाद (Monotheistic) : सिद्धांत जो केवल एक ही ईश्वर के होने में विश्वास करता है।

अनेकवाद (Polytheism) : ऐसा सिद्धांत जो एक से अधिक ईश्वरों के अस्तित्व में विश्वास करता है।

अमरत्व (Salvation) : इसके मायने हैं अपनी आत्मा अथवा विश्वास को बचाकर रखते हुए ताकि व्यक्ति अपने पापों का प्रायष्चित करने के बाद मोक्ष को प्राप्त करके स्वर्ग में चला जाये। यह एक ऐसी धार्मिक मान्यता है जो कि ईसाई धर्म में भी प्रचलित है।

आर्य समाज (Arya Samaj) : मूलार्थक रूप से '' आर्यों का समाज'', स्वामी दयानन्द के संरक्षण में इसका अस्तित्व सन 1875 में हुआ।

इष्टदेव (Ishta Deva) : एक निजी ईश्वर जिसकी भक्तगणों द्वारा मोक्ष प्राप्त करने के लिये आराधना की जाती है।

ईश्वरवादी (Literati) : ऐसे विद्वान व्यक्ति जिन्होंने ग्रंथों का अध्ययन किया है।

एकेश्वरीय (Monotheistic) : केवल एक ईश्वर में आस्था रखना।

एकीकरण (Integration) : एक समाष्टि का रूप लेने की क्रिया या प्रक्रिया

ओक्का (kka) : कुर्गों में रक्त संबंधों से जुड़े तथा एक ही पूर्वज के वंशज पुरुषों, उनकी पत्नियों एवं बच्चों का समूह।

करिश्मा (Charisma) : निश्चित पारलौकिक अथवा दैवीय गुण अथवा दैवीय कृपा से प्राप्त विशिष्टता।

कैथोलिक चर्च इसे रोम का चर्च भी कहा जाता है। इसका मुख्यालय वैटिकन सिटी में है और इस चर्च का प्रमुख पोप होता है। सुधारवाद से पहले यही ईसाई धर्म का मुख्य चर्च था। सुधारवाद के बाद इससे कई अलग पंथ बन गए, जैसे कल्विनवादी, लूथरवादी, बैप्टिस्ट आदि।

गोपनीय (Esoteric) : वे क्रिया (ए) या प्रतीक जो विशेषीकृत या ''गुप्त'' होते हैं और केवल कुछ विशेष व्यक्यिों को ही इनका पता होता है।

गुरुकुल (Gurukul) : आर्य समाज के सिद्धान्तों पर आधारित एक शैक्षिक संस्था।

गृहस्थ (Grihastha) : जीवन का दूसरा चरण, गृहस्थी के संचालन के रूप में

जादू-टोना (Sorcery) : कुछ प्राप्त करने के लिए जादुई कलाओं का प्रयोग करना।

जीवात्मवाद या प्राणवाद (Animatism): धर्म के विकास में जीववाद से पहले की स्थिति यह सिद्धांत जीवन अर्थात् चेतना को हर तत्व की मूल विशेषता मानता ळें

जादू-टोना (Magic): ऐसे अनुष्ठान संपन्न करना, जिनके बारे में माना जाता है कि इन्हें करने से अलौकिक शक्तियाँ इच्छित तरीके से व्यवहार करेंगी।

जीववाद (animism) : धर्म पर टाइलर के विचार के संदर्भ में, जीववाद शरीर से पृथक आत्मा के अस्तित्व में विश्वास की ओर संकेत करता है।

झाड़-फूंक (Exorcism) : किसी के शरीर में प्रविष्ट अच्छी अथवा बुरी आत्मा को स्तुति अथवा अनुष्ठान द्वारा निकालने की प्रक्रिया

टोटम (Totem) : ऐसा पौधा या पशु, जिससे कुल (clan) की पहचान होती है।

त्याग (Renunciation) : सांसारिक व भौतिक संपति, इच्छाओं सुखों से मुक्त बंधनों से परे रहना।

तीर्थयात्रा (Tirtha Yatra) : यह हिंदुओं में प्रचलित शब्द है। इसका षाब्दिक अर्थ होता है नदी के घाटों की यात्रा करना।

दिव्य-दृष्टि (Clairvoyance) : मस्तिक के धरातल पर देख सकने की योग्यता

दैवीय (Supernatural) : परासामान्य प्रघटनाओं से संबंधित जैसे देवतागण, प्रेत और दैत्य।

धर्म संस्था (Ecclesia) : चर्च का संगठन

धर्म सिद्धांत (Dogma) : विश्वास या अनेक विश्वासों का तंत्र, जिसे किसी विशेषाधिकारी द्वारा बिना कोई संदेह रहे स्वीकार करने के लिए प्रस्तुत किया जाता है।

धार्मिक कृत्य (Rites) : धार्मिक समारोह के लिए निर्धारित कार्य पद्धति ।

धार्मिक धारणा (Creed) : विश्वास अथवा विचारों की, विशेष रूप से धार्मिक सिद्धांत पर आधारित पद्धति तथा ईसाई सिद्धांत का सार।

नकारात्मक धार्मिक कृत्य (Negative Rites) : वे निषेध जिनपर पवित्र की ओर जाने से पहले अमल करना होता है।

नास्तिक (Atheist) : जो ईश्वर के अस्तित्व में विश्वास नहीं रखता।

नियमास (Nyamas) : नियम एवं विनियम।

नियोग (Niyoga) : जिसमें एक विधवा स्त्री को अपने मृत पति के भाई से संतान प्राप्त करने की अनुमति प्रदान की जाती है।

निस्वार्थ (Selflessness) : अपने बारे में सोचे बिना किसी कार्य को करना। अतः ''निस्वार्थ भक्ति'' एक ऐसी भक्ति होगी जिसमें व्यक्ति केवल ईश्वर का ध्यान करेगा तथा अपने आप को भुला देगा और यह परवाह नहीं करेगा कि उसे इस भक्ति से क्या हासिल होगा।

पवित्र (the sacred) : यह जीवन के उन क्षेत्रों की ओर संकेत करता है जो धर्म से संबंधित है। मलिनॉस्की के विचार में पवित्र के अंतर्गत जादू-टोने से संबंधित अनुष्ठान भी शामिल हैं, जो धार्मिक अनुष्ठानों से अलग है। इस प्रकार मलिनॉस्की की इस शब्द की परिभाषा व्यापक कोटि की है।

पवित्र (Sacred) : सर्वोच्च, सम्मानित तथा सर्व-पवित्र तत्वों की जगत। दुर्खाइम के अनुसार इसे लौकिक से अलग रखा जाता है।

पवित्र माता (Holy Mother) : श्री शारदा देवी

पंथ (Cult) : धार्मिक पूजा की एक पद्धति

परम्परागत (Orthodox) : प्रायः बिना किसी ठोस आधार के परम्परागत विचारधारा।

पंचांग (Panchang) : शुभ एवं अशुभ समयों का तिथि पत्र ।

पुनः एकत्रीकरण (Reaggregation) : इसे घर आना या उस स्थान की वापसी भी कह सकते है जहाँ तीर्थयात्रा का समापन होता है।

पुण्य (Merit) : ऐसी धार्मिक रीतियाँ या प्रथाएँ जिनका उद्देश्य व्यक्ति के अपने और दूसरों के भावी आध्यात्मिक कल्याण को बेहतर बनाना होता है।

पूंजी संचयन : इसका आशय संसाधनों के संग्रहण से है और इसे उद्योग में पुनःनिवेश कर दिया जाता है ताकि उद्योग का विस्तार किया जा सके।

पारलौकिक (Transcendental) : मानवीय ज्ञान से परे जिससे व्यावहारिक अनुभव के आधार पर जाना अथवा समझा नहीं जा सकता।

प्रति संरचना (Antistructure) : यह संरचना का उलटा नहीं बल्कि तमाम सामाजिक संरचनाओं का स्रोत है।

प्रक्षेप (Interpolation) : एक धार्मिक ग्रंथ की व्याख्या एवं विस्तृत रूप से वर्णन करना। इस संदर्भ में (वेद)।

प्रकार्य (Functions) : प्रणाली के अस्तित्व के लिए उसके किसी अंग का प्रकार्य।

बहुईश्वरवादी (Polytheistic) : अनिवार्य रूप से एक से अधिक ईश्वर पर विश्वास करने से संबंधित

बिरादरी (Communitas) : तीर्थयात्रा के संबंध में बिरादरी का अर्थ होता है दूसरे तीर्थयात्रियों के साथ एकत्व की भावना कायम करना और तमाम सामाजिक प्रतिबंधों से वर्ग या पंथ से मुक्ति। यह तब तक चलता है जब तक तीर्थयात्री पवित्र स्थल में रहता है।

ब्रह्मचर्य (Brahmcharya) : धार्मिक भावनाएं रखने वाले हिंदू के जीवन का वह पहला चरण जहाँ वह कुंआरे रह कर शिक्षा प्राप्त करने के कार्य में लगा रहता है।

बोधात्मक (Ecstatic) : जिसमें व्यक्ति आनन्द महसूस करता है तथा स्वयं को बिल्कुल एकांतवास की ओर भी ले जा सकता है।

बेलूर मठ (Belur Math) : रामकृष्ण मिशन का मुख्यालय

भक्ति (Bhakti) : भक्ति के मायने हैं समर्पण का एक भाव जिसमें व्यक्ति इष्टदेव की उपासना के अलावा हर चीज को भुला देता है।

मठ (Math) : चितनशील व्यवस्था

मंत्र (Mantras) : धार्मिक शब्दों का उच्चारण एवं उनकी व्याख्या ।

मिशन (Mission): सामाजिक रूप से सक्रिय व्यवस्था

मुक्ति (Mukti) : आत्मिक रूप से मोक्ष।

मुर्थ (Murtha) : शुभ दिन के सबसे शुभ मुहुर्त पर किया जाने वाला एक कुर्ग अनुष्ठान।

रहस्यवादी (Mystic) : जो आध्यात्मिक महत्व की चीजों से सरोकार रखता है। रहस्यवादी का जीवन जीने वाला व्यक्ति अवहेलना तथा निस्वार्थ समर्पण भाव के जरिये देवता अथवा ईश्वर के साथ एकता स्थापित करने का प्रयत्न करता है।

लिंगम (Lingam) : यह शिव की मूर्ति का प्रतीक है जिसे हम मंदिरों में देखते हैं। शिव लिंग बहुत छोटा बनाया जाता है और किसी धातु के आवरण में जड़कर लिंगायतों द्वारा गले में पहना जाता है।

लौकिक (Profane) : दुर्खाइम के अनुसार, वह जगत जो पवित्र का विरोधी है तथा जिसे उससे दूर रखा जाता है। अन्य शब्दों में लौकिक का अभिप्राय है मानव जगत।

लोक प्रचलित (Exoteric) : वे क्रियाएं या प्रतीक जो आम आदमी को ज्ञात होते हैं और जिन्हें वह समझता है।

लौकिक (the profane) : यह जीवन के उन क्षेत्रों की ओर संकेत करता है जिनका संबंध धर्म या धार्मिक प्रयोजनों से नहीं है, दूसरे प्राब्दों में उनका संबंध लौकिक पक्षों से है।

वानप्रस्थ (Vanaprastha) : कर्तव्यों को पूरा करने के बाद एकांत में ध्यान व तप करने के लिए प्रस्थान करना।

वेदान्त (Vedanta) : हिन्दू धर्म का एक दर्शन जो सभी घटनाओं के बीच एकात्मक एकता को ईश्वर की इच्छा के साथ रखते हुए प्रचारित करता है।

विश्वास (Belief) : मन की स्थिति या भाव से जुड़ा ऐसा विचार प्रवर्षत्ति, जिसमें किसी व्यक्ति या तत्व के होने यकीन या भरोसा किया जाता है।

विच्छेद (Separation) : ऐसे संस्कार जो जीवितों और मृतकों के बीच संबंध समाप्त करने के उद्देश्य से किए जाते हैं। जैसे-अंतिम संस्कार।

विधान (Canon) : कोई भी निर्धारित कथन, नियम या मानदंड नियम या मान्यता आधारित शास्त्रों के विधान का अर्थ है पुस्तकों की एक नियत सूची जो पवित्र शास्त्रों से संबंधित है।

विश्वास (Tenets) : किसी धर्म की बुनियादी प्रस्थापनाएं या धार्मिक सिद्धांत।

संघर्ष/टकराव (Conflict) : दो समूहों के व्यक्तियों के बीच संघर्ष या होड़

समावेशन (Incorporation) : वे संस्कार जो व्यक्ति का समाज में विलय करते हैं जैसे-जन्म के संस्कार।

साम्प्रदायिक (Parochial) : संकीर्ण एवं अंधमत विचारधारा।

संत जीवनी संग्रह (Hagiography) : संतों के जीवन पर लिखी रचनाओं से संबंधित।

सकारात्मक धार्मिक कृत्य (Positive Rites) : पवित्र की ओर जाने से पहले की तैयारियां या शुद्धिकरण संस्कार।

सांक्रांतिक (Liminal): तीर्थयात्रा पर होने, तीर्थ स्थल में जाने और लौटने की स्थिति। हम यह कह सकते हैं कि तीर्थयात्रा सांक्रांतिक वातावरण में होती है अर्थात घर और तीर्थ स्थल के दो स्थानों के बीच में होती है।

सुधारवाद : यह एक धार्मिक क्रांति थी जो सोलहवीं शताब्दी में पश्चिमी यूरोप में चर्च में फैले भ्रष्टाचार के विरूद्ध हुई। इसकी वजह से प्रोटेस्टेंट मत का जन्म हुआ जो कैथोलिक

चर्च से अलग होकर बना था।

सिद्धांत (Doctrine) : धार्मिक विश्वास पर आधारित

सत्ता (Power) : राजनीतिक प्राधिकरण या अधिकार जिससे किसी को जनता को आदेश देने या प्रभावित करने का अधिकार मिल जाता है।

संस्कार (Ritual) : संस्कार धर्म का सार तत्व होता है। इसके नियम मौखिक रूप से या शास्त्रों के माध्यम से दिए जाते हैं।

संक्रांति (Transition) : ये संस्कार गर्भावस्था और दीक्षा में महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं।

सूफी (Sufi) : रहस्यवादी संत जो कि इस्लामी परंपरा में उभर कर सामने आये।

समन्वयवाद (Syncreticism) : विभिन्न विचारधाराओं अथवा पंथों अथवा विश्वासों का विलय।

सनातन धर्म (Sanatan Dharma): शाश्वत धर्म

सन्यास (Sanyasa) : जीवन का वह अंतिम चरण जहां व्यक्ति भौतिक संसार को त्याग देता है।

शुद्धि (Suddhi) : किसी अन्य धर्म में परिणित हुए हिन्दुओं का हिन्दू धर्म में वापसी के समय किये जाने वाला धार्मिक अनुष्ठान।

ignou
THE PEOPLE'S
UNIVERSITY

कुछ उपयोगी पुस्तकें

Alford, R.R. (1963). *Party and Society*, Rand McNally.

Bella, R.N. (1967). 'Civil Religion in America', *Daedalus* 96 :.1, winter, pp 1-20.

Bharati, Agehannanda. (1963). '*Pilgrimage in the Indian Tradition'*, History of Religions, 3 (No. 1) 135-167.

Bhatt, G.S. (1961). *Trends and Measures of Status Mobility Among the Chamars of Dehradun.* The Eastern Anthropologists XIV (3): Lucknow EFCS.

Birnbaum, N. (1953). 'Conflicting Interpretations of the Rise of Capitalism', *BritishJournal of Sociology*, Vol. IV (2), pp. 125-141.

Chopra , V.D. Mishra, R.K. Singh, N. (1984). *Agony of Punjab,* New Delhi: Patriot Publishers.

Conklin, J.E. (1984). *Introduction to Sociology*, New York: Macmillan.

Coppet, D. (ed.) (1992).*Understanding Rituals*, London and New York: Routledge.

Derathe, R. (1968). 'Jean Jacques Rousseau' in *International Encyclopedia of the Social Sciences*, edited by David & Sills, New York: Macmillan.

Durkheim, E. (1915). *The Elementary Forms of the Religious Life*. (Trans. J.S. Swain), Glencoe: The Free Press.

Durkheim, E. (1912) 1954. *The Elementary Forms of the Religious. Life*, London: Allen and Unwin.

E. E. Evans-Pritchard. 1963 (1940). "*Time and Space.*" In The Nuer, Oxford: Clarendon Press,

Frazer, J. (1890) 1950, *The Golden Bough*, London: Macmillan.

Freud, S., 1918. *Totem and Taboo*, New York.

Fuchs, Stephen. (1988). *The Korkus of the Vindhya Hills,* New Delhi: Inter-India Publications.

Geertz, C. (1960), *The Religion of Java*, New York: Free Press.

Geertz, Clifford (ed), (1963). *Old Societies and the New States, the Quest for Modernity in Asia and Africa,* New Delhi: Amerid Publishing Co. Pvt. Ltd.

Gerth, W.H. and C.W. Mills. (1952). *From Max Weber: Essays in Sociology*, London: RKP.

Ghosh, S.K. (1981).*Violence in the Streets: Order and Liberty in Indian Society*, New Delhi: Light and Life Publishers.

Ginzburg, Carlo.1991. *Ecstasies.* Translated by Raymond Rosenthal, New York: Pantheon Press.

Glazer, N. and Moynihan. (1973). *Beyond the Melting Pot*.

Gluckman, M. (1963). *Rituals of Rebellion in South East Africa.* In order and Rebellion in Tribal Africa, London: Cohen and West.

Gopal, S. (ed) (1980). *Jawaharlal Nehru: An Anthology*, Delhi: Oxford University Press.

Hargrove, B. (1989). *The Sociology of Religion: Classical and Contemporary Approaches*, Illinois: Arlington Heights.

Hayes, C.J.H. (1926). *Essays on Nationalism*, New York: Macmillan.

Johnson, Harry M. (1968). *Sociology-A Systematic Introduction*, London: Routeledge Kegan and Paul: (chs 15 and 17).

Kapur, Tribhuwan. (1988). *Religion and Ritual in Rural India*: A Case Study in Kumaon, New Delhi: Abhinav Publications.

Karve, I. (1982). 'On the Road- A Maharashtrian Pilgrimage', *Journal of Asian Studies*. 22: 13-29.

Kuper, H. (1947). *An Africa Aristocracy*, Oxford: Oxford University Press.

Laswell, M.D. and A. Kaplan. (1950). *Power and Society: A Framework for Political Enquiry*, Yale University Press.

Leach, E.R. (1961). *Rethinking Anthropology*, London: Athlone.

Macauliffe. (1909). *The Sikh Religion*, Oxford.

Madan, T.N. (1983). 'The Historical Significance of Secularism in India' in *Secularization in Multireligious Societies*, edited by S.C. Dubey and V.N. Basilov: Indo Soviet Perspectives ICSSR: Delhi.

Madan, T.N. (1987). Non-Renunciation *Themes and Interpretations of Indian Culture*, Oxford University Press: Delhi.

Malinowski, B. (1922). *Argonauts of the Western Pacific: An Account of Native Enterprise* and *Adventure in the Archipelagoes of Melanesia*, New Guinea, London: RKP.

Malinowski, Bronislaw. 1948. *Magic, science and religion and other essays*. Selected, and with an introduction by Robert Redfield, Boston: The Free Press.

Marglin, Frederique Apffel. (1985). *Wives of the God King: The Rituals of the Devdasis of Puri*, Oxford University Press: Delhi.

Marx, K. and F. Engels. (1976). *On Religion Moscow:* Progress.

Marx, Karl. 2008/9 [1843]. "*On the Jewish Question*" in Deutsch-Französische Jahrbücher. Proofed and Corrected: by Andy Blunden, Matthew Grant and Matthew Carmody.

Mathur, K.S. (1961).Meaning of Hindusim a Malva Village. In *Journal of Social Research* IV/1-2, CSCR.

Mauss, Marcel.2008 (2003). *On prayer*, USA: Berghahn Books.

Moore, S.J. and Frederick, V. (1964). *Christians in India,* Delhi: Publications Division.

Max Weber.1978. *Economy and society*, Edited by Guenther Roth and Claus Wittich, California: University of California Press.

Max Weber. 2001. *The Protestant ethic and the spirit of capitalism*. Translated by Stephen Kalberg, England: Roxbury Publishing Press.

Mircea, E. (1959). *The Sacred and the Profane*, New York.

Nisbet, R. (1968). *'Civil Religion' in International Encyclopedia of the Social Sciences*. edited by David, E. Sills, New York: Macmillan.

O'Dea, Thomas, F. (1966). *The Sociology of Religion*, Prentice Hall: New Delhi.

Pandey, Raj Bali. (1976). *Hindu Samskaras: Social Religious Study of the Hindu Sacraments*, Delhi: Motilal Banarsidas.

Patel, Babubhai, J. (1990). '*The Recent Issues of Communal Tensions- A Remedial Thinking*'in Kumar, Ravindra (ed.) 1990 Problem of Communalism in India. (1966). *Muslims in India*, Delhi: Mittal: Delhi Publications Division.

Robert, Hertz. 1973 (1909). "The Pre-eminence of the Right Hand." In *Right and Left: Essays on Dual Symbolic Classification*, edited by R. Needham, Chicago: University of Chicago Press.

Radcliffe-Brown, A.R. (1966, 1922). *The Andaman Islanders*, New York: The Free Press.

Rao, M.S.A. (1969). *'Religion and Economic Development'*, Vol. XVII (1), pp 1-15', Sociological Bulletin.

Sangave, V.A. (1980). *Jaina Community*, Bombay: Popular Perakshan.

Saraswati, Baidyanath. (1978). "*Sacred Complexes in Indian Cultural Traditions*". In the Eastern Anthropologist,. 31 (1): 81-91.

Singer, M. (1972). *When a Great Tradition Modernises*, Delhi:

Singh, Gopal. (1970). *The Sikhs*, Madras: M. Seshachalam and Co.

Singh, N.K. (1991). A Study of Jains in Rajasthan Town in Carrithers, M., and Caroline Humphrey (eds.) *The Assembly of Listeners: Jains in Society*, Cambridge: Cambridge University Press.

Srinivas, M. N. 1952. *Religion and society among the Coorgs of south India*, Oxford: Clarendon.

Srinivas, M.N. (1970, 1962). *Caste in Modern India and Other Essays,* Bombay: Asia Publishing House

Tambiah, Stanley Jeyaraja. 1990. *Magic, science, religion and the scope of rationality*. Cambridge: Cambridge University Press.

Tylor, E.B. (1958). *Primitive Culture* 2 Vol, Gloucoster Mass: Smith.

Turner V, & E. Turner. (1978). *Image and Pilgrimage in Christian Culture*, New York: Columbia Press.

Turner, Victor W. (1979). *Process, Performance and Pilgrimage,* New Delhi: Concept Publishing Company.

Van Gennep, A. (1966). *The Rites of Passage* (Trans. M.B. Vizedom and G.L Cafee),Chicago: University of Chicago Press.

Verma, Virendra. (1990). *Communalism: Remedial Suggestions,* in Kumar (ed Ravindra 1990, *Problem of Communalism in India*, Delhi: Mittal Publications.

Vikas, Tuner, V. (1967). *Forest of Symbols*. Ithaca.

Wallace, A.F. (1959). *Religion: An Anthropological View,* New Haven.

Weber, M. (1950). *The Protestant Ethic and the Spirit of Capitalism*, trans by T. Parsons, New York: Charles. Scribner.

— (1963). *The Integrative Revolution Primordial Sentiments and Civil Politics* in the New States. Pp 105-157.

—— (1968). *The Drums of Afflictions*, London.

——,(1969).'The *Social Foundation of Religion' in Roland Robertson*,(ed)Sociology or Religion: Penguin.

——(1969). *The Ritual Process*, Ithaca.

——(1991).. '*Introduction' to Madan T.N.* (ed.) (1991). *Religion in India*, Delhi: Oxford University Press.

——(1991). 'Secularism in its Place pp. 394-412 in *Religion in India* (ed.). Madan, T.N. (1991), New Delhi: Oxford University Press.

——(1993).'Religious Fundamentalism'. *The Hindu*. 29 Nov. '93.

——, (1985). Kashi Pilgrimage, *The End of an Endless Journey*. In Jha Makhan (ed.). *Dimensions of Pilgrimage*, New Delhi: Inter-India Publications.

——, (1974). B (1969). *The Ritual Process: Structure and Anti-Structure*, Harmondsworth: Penguin Books.